शिक्षक दिवस

1974

रोशनी बांट दो

कविता संकलन

सम्पादक
रामदेव आचार्य

भाया प्रकाशन मन्दिर,
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-२

आमुख

प्रति वर्ष शिक्षक दिवस पर राजस्थान का शिक्षा विभाग शिक्षकों की साहित्यिक कृतियों के प्रकाशन का प्रबन्ध करता है। अब तक कुल २७ प्रकाशन प्रकाशित हो चुके हैं।

इस वर्ष भी सदा की भांति ५ प्रकाशन प्रस्तुत किये जा रहे हैं, किन्तु इस बार पाठकों को कुछ नई विशेषताएँ देखने को मिलेंगी।

पहली विशेषता यह है कि 'शिवरा' सम्पादक मण्डल की विशेष अभिशंसा पर इस वर्ष इन प्रकाशनों के सम्पादन का कार्य सरकारी सेवाओं से बाहर स्वतन्त्र साहित्यकारों को सौंपा गया है, जिन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता व निष्पक्षता के साथ प्रकाशनीय रचनाओं का चयन किया है। इस प्रकार इस वर्ष आपको पाँच भिन्न दिशाओं से, पाँच भिन्न दृष्टियों से, चयन की गई रचनाओं का आस्वाद प्राप्त होगा। पाँचों पुस्तकों की भूमिकाएँ भी आमंत्रित सम्पादकों द्वारा लिखी गई हैं। विश्वास है, इन भूमिकाओं से हमारे शिक्षक-लेखकों को अपनी सृजनशीलता के मूल्यांकन व मार्गदर्शन में मदद मिलेगी।

दूसरी विशेषता यह है कि इस वर्ष दो लेखकों की दो पूरी पुस्तकाकार कृतियाँ प्रकाशित की जा रही हैं और ये दोनों ही राजस्थानी में हैं। इन दो में से एक लेखक नृसिंह राजपुरोहित की एक अन्य कृति 'अमर-चूंनड़ी' (*राजस्थानी कहानी संग्रह*) *हम पहले सन् १९६६ में प्रकाशित कर चुके हैं।* इस बार पाठक इनका राजस्थानी उपन्यास 'भगवान महावीर' पढ़ेंगे। यह वर्ष भगवान महावीर की २५००-वीं जयन्ती का विशेष समारोह का वर्ष है। इस दृष्टि से भी यह कृति विशेष उपयोगी रहेगी।

लेकिन विभागीय प्रकाशनों की शृंखला में अन्नाराम सुदामा पहली बार आ रहे हैं। राजस्थानी लेखन में इनकी शैली का विशेष स्थान है। आशा है, पाठकों को इनका उपन्यास 'आंधी अर आस्था' पसंद आयगा।

जिन साहित्यकार-बन्धुओं ने इस वर्ष के प्रकाशनों की रचनाओं के चयन-सम्पादन का भार स्वीकार कर इस नई योजना में विभाग को सहयोग दिया है, उनके हम आभारी हैं। विश्वास है, इस नई योजना का सभी क्षेत्रों

में स्वागत किया जायेगा। चयन-सम्पादन का कार्य पाँच भिन्न व्यक्तियों द्वारा सृजन-कार्य में रत अनुभवी साहित्यकारों द्वारा किये जाने के कारण सामग्री की उत्कृष्टता और वैविध्य की भी नयी अनुभूतियाँ हमें उपलब्ध हो सकेंगी।

राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों की इन कृतियों के लिए हमें इस वर्ष डेढ़ हजार से भी अधिक रचनाएँ प्राप्त हुई थीं। प्रति वर्ष बढ़ती हुई इस संख्या से ज्ञात होता है कि हमारे शिक्षक साहित्य-सृजन में उत्तरोत्तर अधिकाधिक रुचि लेने लगे हैं।

जिनकी रचनाओं का चयन हुआ है, उन्हें हमारी बधाई ! जिनका चयन नहीं हो सका है, उन्हें निराश नहीं होना चाहिए, उनमें भी कई उत्कृष्ट रचनाकार हैं। स्थानाभाव के कारण कई उत्कृष्ट रचनाएँ भी लौटानी पड़ती हैं।

जिन प्रकाशकों ने इन प्रकाशनों में हमें सहयोग दिया है, विभाग उनका आभार मानता है।

सतीशकुमार
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर।

रोशनी बाँट दो

परिचय

"रोशनी बाँट दो" राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाश्य सृजन-रत शिक्षकों का कविता-संकलन है। पुस्तक का नामकरण इस दृष्टि से किया गया है कि रोशनी बाँटना कवि का कर्म भी है, और शिक्षक का भी।

संकलन में ली गयीं रचनाओं के बारे मे सम्पादक के दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण यों है :—

संकलित रचनाएँ पूर्वाग्रह-मुक्त-मानस से स्वीकार की गयी हैं।

सम्पादक के समक्ष नये-पुराने शिल्प-विधान का पूर्वाग्रह नहीं रहा है, न राजनीतिक-सामाजिक-धार्मिक-साहित्यिक वाद-विवाद का। चयन का आधार, किसी भी रूप मे, वैयक्तिक रुचि तक सीमित नहीं रहा है, क्योंकि रचनाएँ पूर्णतया वाद-मुक्त मन से स्वीकारी गयी हैं।

रचना का चयन दो आधारों पर किया गया है : (१) वस्तु का स्तर तथा (२) काव्य संवेदना की उपस्थिति। रचना के सामयिक या पारम्परिक रूप विन्यास ने सम्पादक के मन में किसी भी तरह की कुण्ठा पैदा नहीं की है। रचना-स्वीकृति के लिए रचना के स्तर और कोई प्रतिमान भी सम्पादक के सामने नहीं रहा है।

इस दृष्टिकोण को समझ लेने से अस्वीकृत रचनाओं के बारे में भी स्थिति स्पष्ट हो जाती है। वे रचनाएँ छोड़ दी गयीं, जो काव्य-संवेदना के स्तर पर शिथिल या अधपकी पायी गयी हैं; या जिन रचनाओं मे चालू किस्म का नारों-नुस्खों-पैटर्नों वाला भाव-बोध पाया गया। क्रम-बद्ध रचनाओं मे कुछ कमजोर कविताएँ भी आ गयी हैं, पर इसका स्पष्टीकरण यही है कि प्राप्य सामग्री मे जितना-कुछ चुनना था, वह इस सामग्री के बिना पूरा नहीं हो सकता था।

इस सम्पादन-कार्य के दौरान मुझे सृजन-रत शिक्षकों की सहस्रों कविताओं के बीच से गुजरना पड़ा। अत मे जो रचनाएँ रुचिकर लगीं, उन्हे "रोशनी बाँट दो" शीर्षक के अन्तर्गत संकलित कर दिया गया है।

"रोशनी बाँट दो" संकलन मे तीन अनुभाग है—(१) रंग और आकृतियाँ (कविताएँ), (२) सृजन के विराम-चिन्ह (छोटी कविताएँ), (३) राग-प्रतिमाएँ (गीत)।

विभाजन रचना की संवेदना के आधार पर किया गया है। क
छन्द-बद्ध कविताएँ 'कविताएँ' अनुभाग में रखी गयी हैं, क्योंकि अपनी संवेदन
मे वे गीत के समीप न होकर कविता की भाव-स्थिति के समीप थीं। क
छन्द-हीन छोटी कविताओं को 'गीत' के अंतर्गत रखा गया है, क्योंकि अप
कोमल संस्पर्श से वे राग संवेदना का निर्माण करती हैं।

तीसरे विभाग को 'क्षणिकाएँ' न कहकर "छोटी कविताएँ" इसलिए
कहा गया है कि चन्द छोटी कविताओं का मर्म क्षण-बोध तक ही सीमित
नहीं रहता। वे अपने रचनात्मक ढांचे में इतनी गम्भीर होती हैं कि
काल की दीर्घाएँ लाँघकर सार्वकालिक अनुभूति का प्रभाव सौंपती हैं। संग्रह
में किसी भी कवि की दो या तीन से अधिक कविताएँ नहीं हैं। छोटी
कविताएँ अधिक हो सकती हैं। कई कवियों की कुछ और कविताएँ भी
ली जा सकती थीं, पर इससे अन्य सृजन-रत लेखकों के अधिकार का
अतिक्रमण हो सकता था।

चन्द कमजोर कविताओं की भाषा मे संशोधन करना, अपव्यय को
हटाना, त्रुटि-पूर्ण छन्द को सही करना सम्पादक की विवशता रही है।

इस संकलन को तैयार कर लेने के पश्चात् सम्पादक का रुख
निराशावादी नहीं रहा है। यदि यह संग्रह स्तरीयता का अहसास नहीं
सौंपता तो हीनता की ग्रंथि भी पैदा नहीं करता। संकलन से यह विश्वास
बँधता है कि राजस्थान का शिक्षक कविता के क्षेत्र मे यदि बहुत अधिक
सशक्त नहीं है तो बहुत अधिक अशक्त भी नहीं है। संकलन की कुछ रचनाएँ
कवियों की प्रतिभा-सम्पन्नता को उजागर करती हैं। चन्द कविताएँ तो
समकालीन काव्य-स्तर के समानान्तर भी रखी जा सकती हैं। जो
कमजोर-रचनाएँ हैं, वे अपने रचयिताओं के भावी विकास के प्रति आश्वस्त
करती हैं।

संकलन की कुछ कविताओं में विद्रोही आकांक्षाएँ हैं, भयंकर आक्रोशी
मुद्राएँ हैं, मौजूदा व्यवस्था के प्रति बुलन्द नफरत है तथा राजनीतिक
भ्रष्टाचार के विरुद्ध क्षोभ और व्यंग्य की अभिव्यक्तियाँ हैं।

सम्पादक के लिए विषय-वस्तु की ये सीमाएँ खोल रही हैं। इस
प्रकाशन की सीमा समझते हुए भी विद्रोही स्वरों को अस्वीकृत नहीं किया
गया है। रचना में केवल काव्य-संवेदना की उपस्थिति का प्रश्न ही सम्पादक
के सामने प्रमुख रहा है। जिस कविता में विषय-वस्तु के अनुरूप भावाभि-
[illegible] हुई, उसे [illegible] के संतुलन के आधार पर

संकलित कर लिया गया है। हाँ, अश्लील अभिव्यक्ति तथा गाली-गलौज को कोई प्रश्रय नहीं दिया गया है।

× × ×

संकलन का पूरा सर्वेक्षण करें तथा रचनात्मक प्रतिभा को रेखांकित करें।

अनुभाग "कविताएँ" में बी एल अरविन्द की दोनों कविताएँ 'अभिनन्दन' और 'इतिहासकार की कलम से' सम्पन्न कविताएँ हैं। 'अभिनन्दन' विषय की मौलिकता तथा निर्वाह के कारण एक स्तर तक पहुँचती है। रचनाकार का धर्म सामग्री का अन्वेषण करना है, तथा चालू पैटर्नों से बचना है। ऐसी उक्ति अनुभव को संवेदना तक पहुँचा देती है :—

ध्रुव सत्य है कि
तूने आदमियों को नहीं
सौ-सौ सरकारियों को डूबने से बचाया है।

× × ×

"इतिहासकार की कलम से" में वर्तमान पीढ़ी के लिए ये पंक्तियाँ :—

आसमान के महल रचाकर
मिट्टी का दर्द झाँकती रही
श्मशान में जलती चिताओं पर
पर्दों की ओट से झाँकती रही।

साँवर दइया "आदमी अभी जिन्दा है" में मानवीय मूल्य का अनावरण सफलता के साथ करते हैं, पर पूरी कविता में अनुभव को मार्मिक स्तर तक पहुँचा देने वाली पंक्ति नहीं है। न कोई कलात्मक काव्य उपकरण।

डॉ. राजानन्द और भागीरथ भार्गव की कविताएँ नयी कविता की रूढ़ शैली में बँधी फ़ार्मूलेबाज़ी की परिणतिएँ हैं। इन कविताओं में कवि-कर्म की रचनात्मक-क्षमता या अन्वेषणात्मक मौलिकता नहीं है। फिर भी राजानन्द की अभिव्यक्ति का एक स्तर है :—

कोई धुन थी, जो मेरे–तुम्हारे भीतर
खिड़की, दरवाजों को खुरचती रही,
कोई जोंक थी, जो सम्भावनाओं के थन से चिपकी
उनका खून पीती रही।

संगठनात्मक है। मानव-प्रकृति की विकृतियों को बताने वाले ये प्रतीक अधिक सधे हुए हैं।

सृजन के क्षणों की उन्मुक्तावस्था को मुखतार टोंकी ने बाँधा है 'सृजन' में। केरोलीन जोसफ दर्द की वैयक्तिक अनुभूति को सार्वजनिक बनाती हैं "दर्द-भरे सन्दर्भ" तथा 'मोमबत्ती' में। जोसफ की कविता सहज और रूमानी है, और यथार्थवादी धारा से थोड़ी कटी हुई है।

ब्रजमोहन द्विवेदी परिस्थिति की विद्रूपता को रेखांकित करते हैं। अर्जुन 'अरविन्द' एक परिवर्तन के आकांक्षी हैं। ये कविताएँ विचार और रूप के स्तर पर और सुगठित हो सकती थीं।

जगदीश उज्ज्वल की छोटी कविताएँ भी गहरे अनुभव से रिक्त हैं, यद्यपि इनमे कविता की ध्वनियाँ हैं।

पुरुषोत्तम 'पल्लव' "कसम" मे, गणेश तारे "रूखी रोटी" मे, तथा रमेश भारद्वाज 'बन्द कपाट' और 'विरलता' में कविता के समीप पहुँचने मे प्रयत्न-शील नजर आते हैं।

मोड़सिंह मृगेन्द्र "कर्म-पुरुष" और "लौह-पुरुष" में पुरानी बात ही कहते हैं। 'मिसयूज' में हल्का व्यंग्य है। उनकी 'डर' कविता अधिक काव्यात्मक है।

विश्वम्भर प्रसाद विद्यार्थी कविता से अधिक सूक्ति-रचना में संलग्न हैं।

मनमोहन झा की "फ्लर्ट रात" में उक्ति-सौन्दर्य है। "बाल-दिवस" में एक सुन्दर वक्रोक्ति है।

जगदीश विमल 'अकाल' मे केवल चमत्कार तक हैं। 'डूबती किरणें' में कुछ सुन्दर बिम्ब हैं :—

'पावस की आँखों पर
एक पूरा इन्द्रधनुष"
× ×
"रक्ताभ अंगुरियों के
नीलम पुखराज उछालती
एक शाम।"

कुन्दनसिंह सजल की 'रचना' और 'सम्पादक' हास्य-मिश्रित व्यंग्य की पठनीय रचनाएँ हैं। इसी तरह वासुदेव चतुर्वेदी की 'चपरासी', और

श्रीमती आशा शर्मा का "दिन बीता" भाव के स्तर पर मर्मिकता से पूर्ण है। गीत की अभिव्यक्ति नारी-सुलभ कोमलता का पर्याय बन गयी है:—"छाया तेरा नशा नयन पर, राम दुहाई"। गीत अपनी रचना में पारम्परिक है।

सत्यपाल भारद्वाज गीत-रचना से तथा विषय-वस्तु से परिचित हैं, पर रचना-काल का स्तर पिछड़ा हुआ है। जयसिंह चौहान "जौहरी" भी काव्यात्मक स्तर से विरक्त नहीं हैं।

कुन्दनसिंह सजल का गीत "दिन हुए खजूर से" एकदम नये और ताजा बिम्बों का गीत है:—

सूख गये ताल सभी, चितातुर रोगी से
तपते हैं पचधूनी, वृक्ष मौन योगी से।

अर्जुन 'अरविन्द' का "सदियों की शाम" भी नयी तरह का गीत है.— "कोहरे ने डाल दिया झील पर पड़ाव।" इसकी तुलना में भगवती प्रसाद गौतम का गीत "घिर आयी शाम" भी पठनीय है।

बजरंग लाल की अभिव्यक्ति रूमानी होते हुए भी परिमार्जित है — "कचनारी सुधियों के रतनारी पांख।"

सुरेश पारीक 'शशिकर' का गीत ठेठ यथार्थवादी है, और एक व्यंग्य के साथ समकालीन जीवन को बांधता है:—

यक्ष्मा से ग्रस्त मनुष्य
उतरते राष्ट्रीय दंगलों में।

नये गीत की भाषा रामस्वरूप 'परेश' के "दर्पण के व्रण" में है:—

नैतिकता आज हुई पुस्तक में बन्द,
सच्चाई सीती है अपने पैबन्द।

यह गीत सामयिक अभिव्यक्ति के बहुत समीप है। परेश के गीत में छन्द की त्रुटियां है। गौरीशंकर आर्य के 'तुम' में परिमार्जित शिल्प की झांकी यहाँ-वहाँ मिलती है, पर गीत पारम्परिक हैं। उन्हें छन्द-रचना के प्रति भी जागरूक रहना चाहिये। रामनिवास सोनी के गीतों में प्राचीन तत्त्व हैं, किन्तु इनमें गीत-संवेदना को प्राप्त करने की प्रयत्नशीलता है।

'गीत' अनुभाग के रचनाकारों में सम्भावनाएँ हैं। यदि वे समकालीन कविता और गीत की प्रवृति से परिचित रहे तो स्तरीय रचनाएँ दे सकते हैं।

—रामदेव आचार्य

कुल मिलाकर 'छोटी कविताएँ' स्तर में कमजोर हैं। इनमें बहुत गहरी, बुनियादी तथा मौलिक विचार-सम्पदा का अभाव खलता है।

× × ×

'संकलन का अंतिम अनुभाग है 'गीत'।

संकलन में दो तरह के गीत हैं। एक किस्म का स्थापत्य पारम्परिक है, दूसरी तरह का स्थापत्य भाषा सृजन के स्तर पर नया है।

मदन याज्ञिक का गीत पारम्परिक होते हुए भी अपनी लय-ताल में सम्मोहक है।

बलवीरसिंह 'करुण' पारम्परिक गीत की भाषा से खूब परिचित हैं। उन्हें राग-संवेदना तथा सरसता का अच्छा ज्ञान है :—

मूर्त्त हुई वेदों की वाणी
× × ×
वैतालिक मिल गया धर्म को
नूतन माध्यम गीत ग्रन्थ को,
रसवन्ती हो उठी हवाएँ—
संरक्षक मिल गया छन्द को।
युग-वीणा की मृदु सरगम पर
गूँजी रामायण।

'करुण' के दोनों गीत पठनीय हैं।

बावरा का जिन्दगी का अनुभव ही कविता बन जाता है :—

पन्थी नहीं काफिला साथ है,
उँगली नहीं, हाथ में हाथ है।
संगत ने ऐसा सवाली किया।
जैसे ज़माने में जलजा दिया।

गोपालप्रसाद मुद्गल 'भास्या' में पारम्परिक होते हुए भी स्तरीय हैं, किन्तु उनका छन्द भी यहाँ-वहाँ लड़खड़ा जाता है।

मनमोहन झा का गीत 'भील के तट पर कुमकुमानी साँझ' रचनात्मक शिल्प के स्तर पर नयी पहचान का गीत है :—

यदि स्वर रंग होते·· ···तो
भील पर एक हल्का-सा
संवेदनशील इन्द्र धनुष
थिरकता न र आ सकता था।

सृजन के विराम-चिन्ह

अनुक्रम

रंग और आकृतियाँ

सृजन के विराम-चिन्ह

राग प्रतिमाएँ

रंग और आकृतियाँ

(कविताएँ)

अनुभाग एक

बी.एल. अरविन्द, सांवर दइया, राजानन्द, कमर मेवाड़ी, वीणा, कुन्दनसिंह सजल, वासु आचार्य, भागीरथ भार्गव, नारायण कृष्ण अकेला, अरनी रॉबर्टस्, सुरेश पारीक 'शशिकर', श्रीनन्दन चतुर्वेदी, जगदीश उज्ज्वल, मणि बावरा, रमेश पुरोहित, रविशंकर भट्ट, अफजल खाँ 'अफजल', मनोहर विश्वास, देवेन्द्रसिंह पुण्डीर, अर्जुन 'अरविन्द', हनुमानप्रसाद बोहरा, कृष्णानन्द श्रीवास्तव मुरलीधर शर्मा 'मधु', मुख्तार टोंकी, चतुर कोठारी, नीलकण्ठ शास्त्री, निरञ्जन प्रकाश मित्तल, कृष्णदत्त शर्मा, और शेरसिंह तूर।

रंग और आकृतियाँ

यानी कविताएँ

छायावाद से सप्तकों और सप्तकों से नयी कविता तक हिन्दी कविता ने भाषा की मादकता से मुक्त होने के लिए एक लम्बी यात्रा की। काव्याभिव्यक्ति आकाशी वातायनों से हटकर सड़कों, पार्कों, नगरों और पगडंडियों से जुड़ी। परिणाम यह हुआ कि कविता वायवीयता और कल्पनाशीलता से हटकर खुरदरी जिन्दगी का पर्याय बनने लगी और उसकी भाषा निर्मम, आडम्बरहीन, यथार्थवादी और सपाट होती गयी। भाषा के साथ-साथ कवि की मानसिकता में एक युगान्तकारी परिवर्तन हुआ और काव्य-सामग्री एक आंतरिक सक्रान्ति से गुजरी। इधर की कविताओं में समकालीन व्यक्ति की अपूर्णता और विद्रोही भंगिमा उभरने लगी है। नयी कविता के समुचित विकास को समझने के लिए सप्तकों की कविता के साथ-साथ प्रगतिशील कविता के मध्य से आज की युवा कविता तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। यहाँ हम कविता के स्तर की बात न करके काव्याभिव्यक्ति के रूप-परिवर्तन की चर्चा कर रहे हैं। इस परिवर्तित भंगिमा को सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, कैलाश वाजपेयी, धूमिल, श्रीकांत वर्मा जैसे कवियों की कविता में देखा जा सकता है।

नयी कविता के परिवर्तित स्वरूप को समझते हुए हमें समकालीन कविता के स्वरूप की परख करनी चाहिए। काव्य के तत्त्वों की पहचान के लिए यह जरूरी है कि हम काव्य-सामग्री तथा अभिव्यक्ति की मौलिकता पर ध्यान दें। भाषा के सर्जनात्मक रचाव को देखना जरूरी है। रचना के स्थापत्य की समरूपता पर दृष्टि डालनी चाहिए। स्रष्टा की अन्वेषणात्मक क्षमता को पहचानना चाहिए। कविता के रचनात्मक ढाँचे में आड़ी-तिरछी नक्काशी को कवि की दुर्बलता मानना चाहिए। एक तटस्थ समीक्षक रचना में अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता या लड़खड़ाहट को निरपेक्ष भाव से समझने-समझाने का प्रयत्न करता है। वह देखता है कि कवि ने बिम्ब-निर्माण तथा दूसरे काव्य-उपकरणों का सधा हुआ, समन्वित प्रयोग किया है या नहीं। जहाँ कवि चालू किस्म की पर्यायवाची अभिव्यक्ति दे रहा है, वहाँ मानना चाहिए कि कवि शब्द की सत्ता और भाव की एकान्तिक प्रस्तुति से अनभिज्ञ है। उसकी कविता केवल शब्द का अपव्यय है। वह सांकेतिक अर्थ-ध्वनियों का सृजन करने में

समर्थ नहीं है। वह केवल समकालीन कविता के बाह्य स्वरूप से परिचित है, तथा भूख-दान-स्वरूप अपनी कविता रच रहा है।

कवि की मानसिकता की जाँच कविता की भाषा से होती है। सही शब्द-संयोजन से सही बिम्ब का निर्माण होता है। शब्द-भाषा ही कवि की यथार्थवादी या वायवीय मानसिकता का प्रमाण देती है। इधर नयी कविता प्रकाशन 'नयी'-१ में डॉ जगदीश गुप्त ने अपनी लम्बी भूमिका में समकालीन कविता को वाद-मुक्त धरातल पर परखने की सलाह दी है। राजनीतिक मतवादों से अलग रहकर केवल कविता के स्तर पर कविता की जाँच निश्चय ही नयी कविता की उदार-मनोवृत्ति की परिचायक है। कविता पहले कविता होती है, फिर राजनीति या सिद्धांतवादिता।

प्रस्तुत कविताएँ वाद-मुक्त धरातल पर ही संकलित की गयी हैं। जिन कविताओं में काव्य-संवेदना की उपस्थिति का भान हुआ, उन्हें संकलित कर दिया गया है।

श्रीमती आशा शर्मा का "दिन बीता" भाव के स्तर पर मार्मिकता से पूर्ण है। गीत की अभिव्यक्ति नारी-सुलभ कोमलता का पर्याय बन गयी है:—"छाया तेरा नशा नयन पर, राम दुहाई"। गीत अपनी रचना में पारम्परिक है।

सत्यपाल भारद्वाज गीत-रचना से तथा विषय-वस्तु से परिचित हैं, पर रचना-काल का स्तर पिछड़ा हुआ है। जयसिंह चौहान "जौहरी" भी काव्यात्मक स्तर से विरक्त नहीं हैं।

कुन्दनसिंह सजल का गीत "दिन हुए लक्कर से" एकदम नये और ताजा बिम्बों का गीत है:—

सूख गये ताल सभी, चिन्तातुर रोगी से
तपते हैं पंचधूनी, वृक्ष मौन योगी से।

अर्जुन 'अरविन्द' का "सदियों की शाम" भी नयी तरह का गीत है.—"कोहरे ने डाल दिया झील पर पड़ाव।" इसकी तुलना में भगवती प्रसाद गौतम का गीत "घिर आयी शाम" भी पठनीय है।

बजरंग लाल की अभिव्यक्ति रूमानी होते हुए भी परिमार्जित है — "कचनारी सुधियों के रतनारी पाँव।"

सुरेश पारीक 'शशिकर' का गीत ठेठ यथार्थवादी है, और एक व्यंग्य के साथ समकालीन जीवन को बाँधता है:—

सदमा से तरल मनुष्य
उतरते राष्ट्रीय दंगलों में।

नये गीत की भाषा रामस्वरूप 'परेश' के "दर्पण के पार" में है —

नैतिकता आज हुई पुस्तक में बन्द,
सच्चाई जीती है अपने पैबन्द।

यह गीत मार्मिक अभिव्यक्ति के बहुत समीप है। परेश के गीत में छन्द की त्रुटियाँ हैं। गौरीशंकर आर्य के 'धुम' में परिमार्जित शिल्प की झाँकी यहाँ-वहाँ मिलती है, पर गीत पारम्परिक हैं। उन्हें छन्द-रचना के प्रति भी जागरूक रहना चाहिये। रामनिवास सोनी के गीतों में प्राचीन तत्व हैं, किन्तु इनमें बोध-संवेदना को प्राप्त करने की प्रयत्नशीलता है।

'गीत' अनुभाग के रचनाकारों में सम्भावनाएँ हैं। यदि वे समकालीन कविता और गीत की प्रवृत्ति से परिचित रहें तो स्तरीय रचनाएँ दे सकते हैं।

—रामदेव आचार्य

बीकानेर

अनुक्रम

रंग और आकृतियां

सृजन के विराम-चिन्ह

राग प्रतिमाएँ

रंग और आकृतियाँ
यानी कविताएँ

छायावाद से सप्तकों और सप्तकों से नयी कविता तक हिन्दी कविता ने भाषा की मादकता से मुक्त होने के लिए एक लम्बी यात्रा की। काव्याभिव्यक्ति आकाशी वातायनों से हटकर सड़कों, पार्कों, नगरों और पगडंडियों से जुड़ी। परिणाम यह हुआ कि कविता वायवीयता और कल्पनाशीलता से हटकर खुरदरी जिन्दगी का पर्याय बनने लगी और उसकी भाषा निर्मम, आडम्बरहीन, यथार्थवादी और सपाट होती गयी। भाषा के साथ-साथ कवि की मानसिकता मे एक युगान्तकारी परिवर्तन हुआ और काव्य-सामग्री एक आंतरिक संक्रान्ति से गुजरी। इधर की कविताओं मे समकालीन व्यक्ति की अपूर्णता और विद्रोही भंगिमा उभरने लगी है। नयी कविता के समुचित विकास को समझने के लिए सप्तकों की कविता के साथ-साथ प्रगतिशील कविता के मध्य से आज की युवा कविता तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। यहाँ हम कविता के स्तर की बात न करके काव्याभिव्यक्ति के रूप-परिवर्तन की चर्चा कर रहे हैं। इस परिवर्तित भंगिमा को सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, कैलाश वाजपेयी, धूमिल, श्रीकांत वर्मा जैसे कवियों की कविता मे देखा जा सकता है।

नयी कविता के परिवर्तित स्वरूप को समझते हुए हमे समकालीन कविता के स्वरूप की परख करनी चाहिए। काव्य के तत्वों की पहचान के लिए यह जरूरी है कि हम काव्य-सामग्री तथा अभिव्यक्ति की मौलिकता पर ध्यान दें। भाषा के सर्जनात्मक रचाव को देखना जरूरी है। रचना के स्थापत्य की समरूपता पर दृष्टि डालनी चाहिए। स्रष्टा की अन्वेषणात्मक क्षमता को पहचानना चाहिए। कविता के रचनात्मक ढांचे में आड़ी-तिरछी नक्काशी को कवि की दुर्बलता मानना चाहिए। एक तटस्थ समीक्षक रचना में अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता या लड़खड़ाहट को निरपेक्ष भाव से समझने-समझाने का प्रयत्न करता है। वह देखता है कि कवि ने बिम्ब-निर्माण तथा दूसरे काव्य-उपकरणों का सधा हुआ, समन्वित प्रयोग किया है या नहीं। जहाँ कवि चालू विषय की पर्यायवाची अभिव्यक्ति दे रहा है, वहाँ मानना चाहिए कि कवि शब्द की सत्ता और भाव की एकान्तिक प्रस्तुति से अनभिज्ञ है। उसकी कविता केवल शब्द का अपव्यय है। वह सांकेतिक अर्थ-ध्वनियों का सृजन करने मे

जब नर्मदा की
उफनती छाती को चीर कर
तू अपनी साँवली कलाइयों से
पतवार थामकर
मौत से संघर्ष कर रही थी,
अपने लिये नहीं, उनके लिए
जिनके भाग्य में अक्सर बदा होता है—
किसी राजनेता का सपरिवार हवाई-सर्वेक्षण
हेलिकॉप्टर द्वारा गिराये गये राशन के थैले
घड़ियाल के आँसुओं से भीगे हुए कुछ रूमाल
और आकाशवाणी से बाँटी गई
मौखिक हमदर्दी !

× × × ×

ध्रुव सत्य है कि
तूने आदमियों को नहीं
सौ-सौ संस्कृतियों को डूबने से बचाया है
हमारी मटमैली मान्यताओं पर जमी
काली परतों को
अपने महत्वाकांक्षाहीन शौर्य से
खुरच कर उजला बनाया है
मानाकि तेरा न कोई घर है
न कोई गाँव है
मगर लहू की इस उफनती नदी में
सचमुच तू एक नाव है
हो सकता है कि
सम्मान-पत्रों और पुरस्कारों की
होने लगे तुझ पर बौछार
किन्तु तेरे वास्तविक मूल्यांकन का नैतिक साहस
अभी हममें नहीं है
क्योंकि तू हिमालय की तरह ऊँची
और गंगा जल की तरह पावन है।

अगर
पेट की आग
और कम होते अनाज के खिलाफ
राशन कार्ड में से नाम घटाने का
षड्यंत्र रचने की सोचते समय
हृदय की रगें दुखती हैं...

तो समझना दोस्त !
यह दुनियाँ चाहे जितने मक्कारों से भर गयी हो
यह दुनिया
जीने लायक रही हो
या न रही हो....

लेकिन
तुम्हारे भीतर
भीतर""और भीतर
आदमी अभी जिन्दा है !

गीत से कविता

* राजानन्द

गीतों की चौखट छोड़कर
पहले पहल जब गद्य-कविता लिखी गई
मुझे लगा, यकायक मैं बालिग हो गया।
पहली कविता और उसके बाद की कविताओं से
पहले पहल जब मानसिक नाभिकाएँ हटी,
मुझे लगा, यकायक मैं अधेड़ हो गया,
एक तीसरी आँख उग आई।

और जब मेरी कविताएँ
गन्दी बस्तियों की साँस पीने लगी;
मंडी में लदान करते मजदूरों का पसीना
सोखने लगी;

मरे हुए का शोक मनाते-से लिपिकों की
उदासी सोचने लगी;
मुझे लगा: यकायक मैं तथागत हो गया,
मेरी कविताएँ वास्तविक कविताएँ बन गईं

शान्ति की खोज में

*वीणा

शोर—
शोर
का शोर
करती भीड़
अक्सर नज़र आती है ।
शोर के विरुद्ध
शोर मचाती है
और स्वयं
शोर करती जाती है ।
अब इस भीड़ को
कौन समझाये ?
शान्ति,
शोर के विरुद्ध
शोर करने से नहीं
चुप रहने से आती है ।
परन्तु
चुप कौन रहे ?
क्योंकि
चुप रहने से
अस्तित्व को आंच आती है ।
इसलिए
यह भीड़
शान्ति की खोज में
'शोर बन्द करो'
के नारे को
बड़े ज़ोर-शोर से
आकाश की
बुलन्दियों तक पहुँचाती है ।

सर्दी के दिन

* कुन्दन सिंह सजल

तंग दिलों की तरह
सिकुड़े हुए
ये सर्दी के दिन।
आजकल
सूरज भी चोर की तरह
दबे पाँव आकर खिसक जाता है।
सुबह चिड़िया की तरह
फुर्र से उड़कर साँझ में बदल जाती है।
धूप बुढ़ा गई है
उसका तेज, उसका जोश
ठंडा पड़ गया है।
अब कोई भी उससे डरकर
पेड़ों तले या मकानों में नहीं छुपता।
घरों की छतें पार्कों में बदल गई हैं।
छुट्टी के दिन सारा घर
छत पर पसर जाता है
शहर या गाँव की सारी रंगीनियाँ,
जो कमरों और ट्रंकों में बंद थीं,
इन पार्कों में छितरा गई हैं।
आजकल मेले तीर्थ-स्थानों पर नहीं,
छतों पर लगते हैं।

रातें
शैतान की ग्रांत की तरह
लम्बा गयी हैं।
हिमालयी हवा
शब्दवेधी बाण की तरह
दरवाजों, खिड़कियों, दीवारों को भेदकर
बिस्तरों के ग्रन्तः तक पैठ जाती है,
बिना ग्रनुमति लिए।
सड़कें, गलियाँ, बाजार
रात के ग्राठ बजते-बजते बर्फ की तरह जम जाते हैं,
ग्रौर सुबह दस बजे, धूप से गर्माकर
फिर बहने लगते हैं।
ग्रब दस व्यक्तियों को नहीं चाहिएं दस मकान,
वे एक में ही सोकर
रात गुजार सकते हैं।
लगता है, मौसम ने
परिवार नहीं
घर नियोजित कर दिये हैं।

एक कविता

*बानु आचार्य

इस विस्तृत मकान के सम्मुख,
संकट रूप में आ चुका है,
इसके अस्तित्व के नष्ट होने का खतरा,
क्योंकि -
मकान के समस्त पत्थरों में,
लग चुकी है होड़,
अपने आप को,
ऊपरी मंजिल की बाहरी सतह पर
शिखर रूप में देखने की ।
चीख उठा है धरातल
होश में आ के तन गयी हैं, दीवारें ।
महसूस हो चुका है,
नीव के पत्थरों को 'दबने' का,
बड़े सुघड़ व्यवस्थित पत्थरों की
जटिल व्यवस्था से और वे हो चुके
आतुर—विद्रोह करने को ।

अभिनय

*—गौरव भार्गव

कितना सुखकर है
अनभिज्ञ रहना
कि मेरा प्यार
मात्र प्रदर्शन है
और तुम्हारा प्यार
केवल श्रेष्ठ अभिनय !

इस सुखानुभूति मे जीना
कि मेरे और तुम्हारे बीच
प्यार का सागर लहराता है,
अनन्त और अथाह सागर
और इस यथार्थ से,
निपट अनजान बनना
कि सागर में लहरें नहीं बनती हैं।

एक कगार पर मैं
दूसरे पर तुम
यूं ही निहारते रहते हैं
अपने-अपने अभिनय को
मात्र कुशल दर्शक से !

शब्द की सार्थकता

*नारायण कृष्ण 'अकेला'

क्या नहीं है तुम्हारे पास !
एक बहुत बड़ा हथियार है,
जिसका एक छोटा सा नाम है
शब्द ।
हाँ, यह वही शब्द है
जिनके द्वारा यदि तुम चाहो तो
बगावत की ऊँची दीवार चिन सकते हो ।
इसी दीवार के सहारे
हिमालय तो क्या आकाश की उच्चतम
चढ़ाई चढ़ सकते हो ।
इसी शब्द के सहारे
नागफनी के देश में
तुम गुलाबों की बहार ला सकते हो ।
एकान्त के मरूस्थल में
भागीरथ बन स्वरों की
आकाश गंगा बहा सकते हो ।
मगर, तुम मौन क्यों हो ?
क्यों नहीं सौंपते उसे सिंहासन,
जिस पर विराजित होने को
'वह' लालायित है और
जिनके अधरों पर गुलाबी मुस्कुराहट नहीं
ज्वालामुखियों का स्फटिक है !
मुझे विश्वास है
तुम्हीं बढ़ाओगे उसकी प्रतिष्ठा
तुम्हीं गूंथोगे फूल अमलतास के ।
भटके नाविकों के लिये
तुम्हीं बनाओगे प्रकाश-स्तम्भ
और एक दिन
सिद्ध करोगे 'शब्द' की सार्थकता ।

• •

सत्य का गला घोंटकर
बरसाती रही
'सत्यमेव जयते' की धारा ।
गंगा और सिन्धु का संगम तोड़कर
लगाती रही—
'जयहिन्द' का नारा ।
गांधी को गोली मारकर
'अहिंसा परमो धर्मः' सिखाती रही,
और इतना ही नहीं
समाजवाद की लोरियाँ गा-गा कर
देश की भूखी पीढ़ी को
फुटपाथों पर सुलाती रही ।
उजली चादर ओढ़ कर
करती रही कुर्सियों के सौदे,
दूसरों के रास्तों में काँटे बिछाने के लिये
सींचती रही गुलाब के पौधे !
आसमान में महल रचाकर
मिट्टी का दर्द आँकती रही,
श्मशान में जलती चिताओं पर
पर्दों की ओट से झाँकती रही ।
'हरित-क्रांति' के सब्जबाग दिखाये
लेकिन टाइपराइटर की
कार्बन-काँपियों में ज्यादा
और खेत-खलिहानों में कम ।
राष्ट्र के बीमार फेफड़ों में
भरती रही जो
भ्रष्टाचार का प्राण-घातक बलगम !
वातानुकूलित कक्षों में बैठकर
जो हल करती रही
गरीबी के सवाल
घड़ियाल के आँसू बहाकर
भिगोती रही रूमाल पर रूमाल ।
पूरब को लात मारकर

सत्य का गला घोंटकर
बरसाती रही
'सत्यमेव जयते' की धारा ।
गंगा और सिन्धु का संगम तोड़कर
लगाती रही—
'जयहिन्द' का नारा ।
गांधी को गोली मारकर
'अहिंसा परमो धर्मः' सिखाती रही,
और इतना ही नहीं
समाजवाद की लोरियाँ गा-गा कर
देश की भूखी पीढ़ी को
फुटपाथों पर सुलाती रही ।
उजली चादर ओढ़ कर
करती रही कुर्सियों के सौदे,
दूसरों के रास्तों में काँटे बिछाने के लिये
सींचती रही गुलाब के पौधे !
आसमान में महल रचाकर
मिट्टी का दर्द आँकती रही,
श्मशान में जलती चिताओं पर
पर्दों की ओट से झाँकती रही ।
'हरित-क्रांति' के सब्जबाग दिखाये
लेकिन टाइपराइटर की
कार्बन-कॉपियों में ज्यादा
और खेत-खलिहानों में कम ।
राष्ट्र के बीमार फेफड़ों में
भरती रही जो
भ्रष्टाचार का प्राण-घातक बलगम ।
वातानुकूलित कक्षों में बैठकर
जो हल करती रही
गरीबी के सवाल
घड़ियाल के आँसू बहाकर
भिगोती रही रूमाल पर रूमाल ।
बुद्ध को लात मारकर

पीढ़ी का संघर्ष

*प्रनी रॉबर्ट

अब बहुत चीख लिये हो,
चुप हो जाओ,
और लहू से रिसते हुए मर्म को
संवेदनाओं का अहसास करो,
फिर वर्फ की सिल्ली का ठंडापन,
जम जायेगा अन्तर में,
और तुम उसे खुरचते रहोगे।.........

तुम्हें दर्पण किसने पकड़ा दिये हैं ?
तुम जो हर साहित्य और हर अभिव्यक्ति को,
अपने ही दर्पण में देखना चाहते हो.........
तुम्हें बंद कमरे की दीवारों में ही,
सिर फोड़ना होगा,
वरना ईसा की श्वास बेमतलब हो जाएगी।

खिड़कियाँ बंद कर दो,
क्योंकि तुम्हें बाहर देखने की आदत है,
जहाँ तुम्हारे प्रतिबिंब किसी मायावी
जाल की तरह बिछे हैं।
वे लोग जो कॉफी के सिपों पर,
हर शाम बिताते हैं,
वे क्या जानें तुम्हारे आक्रोश को,

क्योंकि तुमने मुस्कराहटें चिपका रखी है—
हिप्पियों की तरह,
गाँजे की लहर में मस्त होकर, कुछ करने की स्थिति में—
तुम अजूबे संगीत पर,
शताब्दियों पीछे खो गये हो,
और शहर का अक्स तुम्हें पी गया है,
इससे तुम अनभिज्ञ हो !

नीले····आकाश पर थूको खूब,
कौन परवाह करता है !
थकी शाम को, निर्जन बाग में
तुम अपनी आत्मा बेच कर
शाम की हत्या भी कर दो, तो
रात तुम्हारा क्या कर लेगी········
पर········

मेरा कहा मानो,
अब तुम बहुत चीख लिये हो,
चुप हो जाओ—

हम सब

*ग्रमर मेवाड़ी

हम सब किसी न किसी इन्तजार में खड़े
अपने क़ीमती समय को बर्बाद कर रहे हैं !
वर्तमान धँस गया है
        भविष्य के गर्त में
ग्रौर
धरती तथा ग्राकाश
एक दूसरे का सर लहू-लुहान कर रहे हैं !
उष्मा फेंक रहा है सूर्य,
झुलस रहा है सफेद कपोतों का समूह,
क्या कोई ईसा नहीं जन्मेगा इस बार ?
हमारे चेहरों पर पुती है कालिख
ग्रौर हम सब नशे में धुत्त
एक ग्रन्धी सुरंग में
        कर रहे हैं, लेफ्ट-राइट
दोस्तो !
ग्रपना क़ीमती समय बर्बाद मत करो
        ग्राग्रो—
हम एक नये इतिहास की संरचना के लिए
        चौराहे पर एकत्र हो जायें !

• •

पीड़ा

*सुरेश पारीक 'शशिकर'

मुँह को खोलकर,
तुम दिखा रहे हो
ना-समझ भीड़ को
उज्ज्वल श्वेतवर्णी, क्रम-बद्ध
दंत-पंक्तियाँ ।
होठों पर ला ला कर
बनावटी स्मित बना रहे हो बेकार वातें ।
मगर मुझे तुम्हारे मुर्दे चेहरे पर
टँगे दृगों में प्रतिमा की तरह
एक अनोखी मायूसी बैठी लग रही है,
जो तुम्हारे अन्तर की पीड़ा को
रह-रह कर उजागर कर रही है,
तुम्हें इतना अवश्य ज्ञान होना चाहिए,
कि कभी विस्फरित होटों से
किसी की पीड़ा नहीं दबती है,
हरदम अन्तर की पीड़ा तो
आँखों में..........बसती है ।

ज़िन्दगी

*राजात

मैंने, या तुमने
हरचन्द कोशिश की
कि अन्दर का बिल्लौरी फ़र्श
मैला न हो;
कि घर का एक ख़ाका
जिसे पनीर की तह पर उतारा था
हक़ीक़त बन सके;
पर बावजूद कोशिश और मशक्कत के
ख़ाका, ख़ाका—ही रहा,
कोई धुन थी, जो मेरे-तुम्हारे भीतर,
खिड़की, दरवाजों को गुनगुनाती रही,
कोई जोंक थी, जो सम्भावनाओं के थन से चिपकी
उनका ख़ून पीती रही ।
ख़ाना-ख़राबी इस हद तक हुई
कि एक बुढ़िया
अपनी झुर्रियों को गिन-गिन कर झींकती रही,
फिर सन्निपात से ग्रस्त हो बड़बड़ाने लगी,
वह कोई नहीं थी,
मेरी और तुम्हारी, ज़िन्दगी – ही थी ।

एक कविता

*वासु आचार्य

तो क्या सचमुच ही
सब व्यर्थ ही रहा मेरे मित्र !
कि मेरी पीड़ा
नहीं ले सकी कोई शक्ल !
कि हवा के झोंको के साथ
खनखनाते पत्तो की तरह
नही फूटी,
कि उबलते सागर की तरह
नही फनी—
तो क्या —बस इसीलिये
मेरे घर के आले में
चिड़िया का अण्डे दे देना
कोई अर्थ ही नही रखता था !
तो क्या सचमुच ही
सब व्यर्थ ही रहा मेरे मित्र ?

आदमी कहाँ हैं हम

*श्रीनन्दन चतुर्वेदी

आदमी कहाँ हैं हम,
मृग हैं—
व्यवस्था के—
मरुस्थल में पलते हैं।
यश के प्रलोभन,
व्यवस्थापक के आश्वासन
भ्रम देकर जल का,
हमें—
बार बार छलते हैं।
अभावों की हवा—
रह-रह—
चुभ जाती आरियों सी,
क्षुधा-रेत उड़-उड़ कर—
आँखों मे गिरती है
वस्त्रहीन, मटियाले—
दीखते वीभत्स हम,
मन के बल—
अक्षम देह
पोकड़ियाँ भरती है।
सोचते कहाँ हैं हम ?
छलिया स्वर बहका कर—
हर लेते हम को,
हम—
बहुविध आचारों के—
बालुइया टीलों मे—
मदहीन चलते हैं।

सत्ता हथिया लो

जगदीश उज्ज्वल

अब
नये प्रजातंत्र में
सफलता के सूत्र यही तो हैं
गुण्डे पालो
अखबार निकालो
जुड़े रहो सत्तारूढ़ दल से !
कोई शिष्टता से कान उठाये
संदेह करे
तुम्हारे कृत्यों पर
चरित्र भ्रष्ट का आरोप लगा दो
अखबार में छपवा दो झूठी खबरें
नकली फोटो
कोई खड़ा हो विरोध प्रदर्शन को
तुरन्त करवा दो हत्या उसकी
वकीलों से मित्रता
जजों तक रखो पहुँच
मन्त्री के साले
या उसके
साले के साले बन जायं
ठेकों का बोझ सम्भालें
नीचे से प्रसाद चढ़ाओ
अधिकारी की मांगों में

अब
नहीं रहा जमाना
आदर्शों का
जीवन के मूल्य बदल गये

यार सभी पुराने हैं
गुन तो कोई मोहाने वाला
नया 'अवतार' बनाओ
भेड़ों के प्रतीक गढ़ गये
पूँछ का मोह धारण करो
गीदड़
शेर
भेड़िया
नाग और गधा
सब की पूरी पोशाक
रखो घर में,
जब भी जरूरत हो जिसकी
निःसंकोच पहन कर
भीड़ में शामिल हो जाओ
धर्म-तन्त्र की सिद्धि के लिए
आयकर की चोरी के लिए
नामधारी धर्मार्थ संस्था खुलवा दो
महिलाओं के कल्याण —
सामाजिक उत्थान का
नया रस्ता खोजो
समाज में नाम कमाकर
पर्दे में आराम करो
मौका नहीं मिले तो
पैदा करो
और
सत्ता हथिया लो
इस प्रजातंत्र में—सफल होना है
तो ये सब सूत्र
अपना लो

• •

फड़फड़ाते सृजन के पंख

*मणि बावरा

निःसंदेह कल हम ही थे ।
हम ही ।
कल हम शांति के हिमायती थे,
और हिमायती थे पाखंडी परम्पराओं को
ध्वस्त कर
नये कथानक रचने के ।
कल हममे एक उबाल आया था उबाल
जैसे आँखें अंगारे हो उठी हों,
जैसे हमारे हाथों मे हथौड़े उग आये हों ।
कल हमारे तेवर
तुनक-तुनक कर
तिल के ताड़ हुए जा रहे थे ।
हितों की रक्षा और साफ-सुथरी व्यवस्था के लिये
गर्म जोशी से गीत गा रहे थे ।
कल हम दहाड़े थे कि
उत्थान का हर अवरोध
और राह का हर विराम चिन्ह
उखाड़ फेंकेंगे ।
कल हम आक्रोशी थे,
आवेशी थे,
यहाँ तक कि आवेश मे भर कर
दिगम्बरी भाषा मे हमने

आदमी के खिलाफ भी व्यक्तव्य दे डाले थे ।
और·······आज
अचानक समझौता-परस्त हो गये ।
हौंसले हवा हो गये,
द्वार-द्वार रुक गये,
हर तोरणद्वार झुक गये ।
आज किसी मदांध मदारी के हाथों
बन्दर की तरह नाचने लग गये,
जम्मूरे की तरह बोलने लग गये,
कोल्हू के बैल हो गये ।
उफ ! क्या से क्या हो गये
आज हमने अपनी क्षमता,
अपना विश्वास,
अपना आत्म-बल,
अपने अस्त्र-शस्त्र,
यहाँ तक कि अपना ताम-झाम
किसी तहखाने में डाल कर
ताला लगा दिया,
और मेंढक की तरह शीत समाधिस्थ हो गये ।
क्या हम दफन हो गये ?
क्रान्ति के कफन हो गये ?
और·······अगर यह सच है
तो पामरों की प्रलयंकारी पीड़ा
कैसे सह सकेंगे,
ये सृजन के पंख ।
सृजन के ये पंख !

एक पारितोषिक

*रमेश पुरोहित

प्लेटफार्म पर कराहते,
विकलांग मानव के,
जाने अनजाने चेहरे,
गलियों में कूचों में, हर जगहों में,
घूमते रहते हैं, कहते रहते हैं—
'कुछ दे दो, कुछ दे दो' इन भिक्षा पात्रों में !
पर……मैं ?
मैं देता नहीं, लिख देता हूँ
उनकी व्यथा को
कविताओं में जिन्हें पाठक पढ़ा करते हैं ।
कह देता हूँ,
प्रवचनों में जिन्हें श्रोता सुना करते हैं !
और सब छोड़ कर 'प्रभाव' के बण्डल ही बण्डल
पा लेता हूँ एक पारितोषिक : मानववाद का !
तब सोचता हूँ……माध्यम……?
दोगला ……है……
वही सिसकता……कराहता……
भिक्षापात्र अधिष्ठाता
जिसे रखकर
व्यथा जिसकी कह कर
पाया है मैंने—
एक पारितोषिक'

• •

एक श्रद्धांजलि
[राजस्थान के मुख्य मंत्री के देहावसान पर]

मनहूस दिन की स्थिति

'भागीरथ भार्ग

उल्लास भरी स्वर लहरियाँ
उन्मादकारी गीत
सुप्त हो गये ।
मुस्कानों से भरे चेहरे
लटक गये गहरी उदासी में ।
ऊँचाई में
फहराते हुए ध्वज
झुक गये सम्मान से
आकाश में रश्मि रथ की वल्गाएँ थामे सूर्य
किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन अपने स्थान पर टिक गया
हवा इधर-उधर अपने सिर को पटकने लगी ।
दिशाएँ अन्धकार से भरी थी
और करोड़ों आँखें नम थी ।
उनका बरकत भाई
क्रूर काल ने छीन लिया था ।

नये साल का सूरज

*श्रीनन्दन चतुर्वेदी

वह—
धरती से उठा—
आसमान पर चढ़ा,
और—
अव्यक्त हो गया।
हर नये साल का सूरज—
उसका अमृत बाँटता है।
वह फिर-फिर व्यक्त होता,
प्रार्थना करता, और—
अव्यक्त हो जाता है।
तुम —
उसे—
बार-बार मारने का दम भरते हो!
भरते रहो,
वह—
कभी नहीं मरेगा।
संगीनें भुका लो,
बंदूकें, तलवारें, बर्छियाँ तोड़ फेंको!
वह अभी जीवित है।
तुमने सलीब पर टाँगा—
तब भी वह जिया था।

बिड़ला भवन में मारा,
वह—
राजघाट से उठ आया था।
रंग और वर्ग की खाई को भरने—
वह—
अटलांटिक के पार—
बहुत दूर जा प्रगटा था।
तुमने गोली मारी !
वह फिर अव्यक्त हो गया
वह नहीं मिटा है
जब तक वहशीपन का
अंधेरा बना है वह—
बार बार आयेगा
संगीनें झुका लो,
प्रकाश से अपनी अंजरी भर लो
हर नये साल का सूरज—
उसका अमृत बाँटता है
प्रार्थना के स्वर—
पहली किरण में सुन पड़ते हैं।

इन्सानियत के खण्डहरों में धुन्धला प्रकाश

*मणि बावरा

झुँझलाहट और उदासी में
ढाँप लेना हूँ चेहरा,
अपनी हथेलियों से।
अन्तर्जल पर तैर रहे अंगारे।
क्या हो जाता है कि
पागल हो उठता हूँ,
और……टटोलने लगता हूँ
इंसानियत के खण्डहरों में
अपनी बिखरी हुई बात।
गर्द उड़ती है
मकड़ी और तल्लीनता से
बुनने लगती है
जाले।
और…………
धीरे से उतर आता है
मटियाया आकाश।
झूमने लगते हैं
देवता का मुखौटा पहने,
नाटकीय मुद्राओं में
अर्थहीन शब्दावली के नागपाश!

ऐसे में ही
हाँ, ऐसे में ही
चीख उठता है
धुंधला-धुंधला सांध्य प्रकाश—
अरे सन्नाटे !
यह जहर बड़ा मीठा है
मत पियो
जिन्दगी की पाती में
खुशहाली के कुछ ही पल तो लिखे हैं
इस तरह किसी कत्लघर में
चुपचाप मत जियो
देखो
कुछ मत्सरी लोग
कहीं छीन न लें
तुम्हारे हाथों से
मुश्किल से तलाशे
कुछ रंगों के
जिन्दा कहकहे !

बंधी ज़िन्दगी

*रविशंकर भट्ट

पांच बज गये,
कृत्रिम गुलाब का फूल बनावटी बालों में लगा,
पत्नी सड़क के सहारे
दरवाजे में खड़ी
मेरी साईकिल की घन्टी का इन्तजार कर रही होगी।
अभियोग लगायेगी,
सुरेश जग जायगा,
नरेश स्कूल से आया नही है,
बन्टू बीमार है,
मुझे बुखार है
चूल्हा जला नहीं,
नल में पानी नही,
साइकिल वाला दूध मिला पानी आया नहीं है
चाय बनी नहीं है।
रोज रोज
फाइलों के फीतों मे बंधी-सी ज़िन्दगी,
दफ्तर के कमरे मे रुकी ज़िन्दगी,
कोई मत पूछो कहाँ जा रहा हूँ,
ज़िन्दगी की लाश ढोये जा रहा हूँ।

बना दो मसीहा

*अकबर खाँ 'अकबर

हाँ-हाँ लटका दो मुझे सलीब पर—
और बना दो मसीहा।
मुझे जीते जी,
शैतान बनाने वालो!
कदम-कदम पर मुझे—
नफ़रत का अहसास दिलाया जाता है।
हर साँस के साथ—
झूँठ और अहं को विष वायु बना—
मेरे फेफड़ों में पहुँचाया जाता है।
दिमाग की नस-नस मे
फूट और साम्प्रदायिकता का
बीज बोया जाता है।
और शरीर की हर शिरा में
चोरी और बेईमानी की सिरींज से—
भ्रष्टाचार को भरा जाता है।
और मुझमें मौजूद
इन्सानियत के जीवाणुओं को
शैतानियत के जीवाणुओं से
युद्ध करने को मजबूर किया जा रहा है।
पर अब, मैं देख रहा हूँ—
रात-दिन होने वाले युद्धों से—
मेरे इन्सानियत के जीवाणु
अधिक मात्रा में शहीद हो गये हैं।
और बच रहे, थोड़े से—
मेरे इन्सानियत के जीवाणु—
पुकार-पुकार कर कह रहे हैं—
लटका दो मुझे सलीब पर
और बना दो मसीहा।

अनुग्रह

*मनोहर 'विश्वास'

क्या अभिलाषा ?
क्या कहूँ ?
अजीव संकट में हूँ ।
तुम्हारे योग्य सम्वोधन ढूंढ़ता हूँ
और हार जाता हूँ ।
देख रहा हूँ
एक फूल
पूरा खिला हुआ,
आलोकिक सुगंध में डूबा हुआ
अपने को लुटाता जा रहा है ।
शायद भटकना ही मेरा धर्म है अभी
फिर भी मैं निराश नहीं हूँ ।
किसी एकान्त में
प्रेम की पगध्वनियाँ
मेरा पता खोज लेती हैं ।
कोई विश्वास मेरे हृदय को दस्तक दे देता है,
कोई आशा मुझे पुकार लेती है,
पर दुर्भाग्य है मेरा
कि पुकार विस्मृत हो जाती है ।
मेरा दुर्भाग्य तो
तू अपने सर मढ़ लेती है ।

जैसे धुएँ को देखकर ग्राग का वोध होता है,
वादल को देखकर वर्षा की संभावना वनती है,
उसी तरह—
शांति में ग्रशांति
सुख में दु.ख ग्रौर
दु:ख में सुख की—
सम्भावना झलकती है।
ग्रत. हम यदि कहें कि—
सुख ग्रौर दु ख,
दु ख ग्रौर सुख सापेक्ष है,
तो कुछ ग्रन्यथा नही ।
सुख ग्रौर दु ख तो एक ही सिक्के के,
स्थायी पक्ष है।
यह विश्लेषण तो एक वैज्ञानिक का होगा।
परन्तु भषाविद्—
क्या कहे,
वह कहेगा, यह तो—
दृष्टिकोण है।
ग्रौर हम सामाजिक प्राणी,
ईश्वर की कृपा,
परन्तु जब हम सभी,
वैज्ञानिक, समाजवेत्ता,
साहित्यकार ग्रौर सामाजिक प्राणी,
सही विश्लेषण करने में—
ग्रपने को ग्रसमर्थ पाते हैं
तो सब एक साथ कह उठते हैं—
यह तो—
प्रकृति है! प्रकृति है!! प्रकृति है!!!

एक बगीचे का वक्तव्य

*अर्जुन 'अरविन्द'

मैं एक उजड़ा बगीचा हूँ,
जिसकी इच्छाओं के शिरीष
आश्वासन के
निर्मम दर्शकों द्वारा रौंद दिये गये हैं।
सूरजमुखी फूलों पर
अंधेरे के गुब्बार छोड़ दिये गये हैं!
आशाओं के
लहलहाते गुलाब
छल के बटोही द्वारा तोड़ लिये गये हैं।
सूखी टहनियों के डंठल,
जिनके सभी पत्ते
बिना पतझड़ के सूख गये हैं,
अपने हाथ उठाकर
मौत की संवेदना प्रकट कर रहे हैं।
भौंरों का मधुर संगीत
दूर सूखी झाड़ियों में
भोंडो राग अलाप रहा है।
तितलियों के पंख
भट्टी की उमस से
सूख कर झर गये हैं।

वेतितलियाँ
अब हवाई उड़ान भरना भूल गयी हैं,
और जी रही हैं
बेसहारा जीवन ।
आँधियों के
उमड़ते अंधारों ने
अपनी बारूदी धूल की
पर्तों से ढँक दिया है
मेरे विश्वासों के महल को ।
पुरवई के
बरसाती बादलों को
पी गया है आकाश ।
गहराई रात ने
अंधेरे का जहरीला धुआं छोड़ दिया है
और एक खद्दरधारी पुरुष
मेरे सीने को कुरेद कर
रख गया है शराब की कुछ बोतलें ।
शासन के चौकीदारों ने
डाल दिया है मेरे मुख पर ताला ।
बोतलों में से रिसती
शराब की बूंदें
मेरी धमनियों में
जहरीली धार छोड़ रही हैं ।
किसी सामाजिक संस्था का
प्रचारक
षोडशी समाज सेविका को
अपने साथ लाकर
वासना के राक्षसी प्रहार करता है ।

एक बगीचे का व

यह एक उजड़ा बगीचा है,
जिसकी इच्छाओं के फिरोज
दासशासन के
निर्मम दलों द्वारा रौंद दिये गये हैं।
सूरजमुखी फूलों पर
अंधेरे के गुब्बार छोड़ दिये गये हैं!
आशाओं के
लहलहाते गुलाब
छल के बटोही द्वारा तोड़ लिये गये हैं।
सूखी टहनियों के डंठल,
जिनके सभी पत्ते
बिना पतझड़ के सूख गये हैं,
अपने हाथ उठाकर
मौत की संवेदना प्रकट कर रहे हैं।
भौरों का मधुर संगीत
दूर सूखी झाड़ियों में
भोंडी राग अलाप रहा है।
तितलियों के पंख
भट्टी की उमस से
झुलस कर झर गये हैं।

गांव का निर्माण

*अर्जुन 'अरविन्द'

शहरी संक्रमण से
घिरा गांव ।
परम्पराओं ने
अपने पुराने वस्त्रों का ढेर
पेट्रोल में जलाकर
नई सभ्यता का पहन लिया
पगडंडियों की पीठ पर
लेट गयी हैं
तारकोल की सड़कें ।
जिन पर दौड़ती हैं
तेल पीते चौपहियों की भीड़ ।
हर लड़की ने
अपने मुस्कराने का ढंग बदल लिया
और बूढ़ा व्यक्ति
स्कूल टीचर से
खाँसने का नया अंदाज पूछता है ।
एक बच्चा
कूड़े के ढेर में गिरा
परिवार-नियोजन दफ्तर द्वारा वितरित
कंडोम
उठाकर गुब्बारा फुलाता दौड़ रहा है ।
हर युवक के होंट
बीड़ी के बदले
सिगरेट पीने के अभ्यस्त हो गये हैं ।
और वह सोचने लगा है
अब पत्नी बदलने की बात ।

सुबह
गिलासों में
दूध के स्थान पर
ढलने लगा है
सफेद प्यालों में हल्का जहर।
छोटे बच्चे
पापा-मम्मी की रट लगाने लगे हैं
इसलिए
कि अब उन्हें मिलते हैं
ताजा मक्खन के स्थान पर
बासी डबल रोटी के टुकड़े।
बढ़ती आय
और बढ़ती मँहगाई ने
एक सार्वजनिक पेशाबघर का निर्माण कर दिया है।
धार्मिक पुस्तकों के संदूकों में
भरे हैं
फिल्मी पत्रिकाएँ और कोक-शास्त्र।
लोकधुनों ने
अपना लिया है
पाश्चात्य संगीत,
और यौवन का ज्वार
उमड़ने लगा है तंग लिबासों में।
ग्राम पंचायत की सभा में
लम्बी बहस के बाद
प्रस्ताव पारित होता है—
गाँव का निर्माण बहुत धीमी गति से चल रहा है!

गांव पीछे रह गया है

*हनुमान प्रसाद बोहरा

ग्रामीण किशोरी
सीखती है 'केबरा-डांस' !
विवाह से पूर्व रोमांस !
ग्वाला कन्हैया
सार्वजनिक पनघट पर
पीकर सिगरेट
करता 'मौलिक-चिन्तन' !
'कितना आधुनिक बन गया पैसे चुराकर'
चाय बिना पिये नहीं उठती है सीता,
कहती है—
'नाम पुराना है, कहो मुझे रीता' !
शराब के ठेकों पर
जमघट में वृद्धि है
परिवार नियोजन ने
चेतना नव भर दी है !
कोई नहीं करता है किसी का यक़ीन,
पनप रहे सन्देह परस्पर नवीन !
होड़ यह है कि
शहर से पीछे न रह जायें,
विकासशील युग में
कोई अवसर न चूक जायें,
यूं तो गांव
किसी पश्चिमी-राष्ट्र का ग्राम बन गया है,
पर पंचायत ने पारित किया है प्रस्ताव—
'यहाँ चाहिये नये आविष्कारों का सहारा
बहुत पीछे रह गया है गांव हमारा !'

काग-उड़ाया

•कृष्णानन्द श्रीवास्तव

मैं आँखें मीड़ रहा बिस्तर पर पड़ा-पड़ा,
घर की मुंडेर पर इतने में बोला कागा,
लक्ष्मी की अम्मा झटपट चिल्लाती आयी,
दुनियां जागी तो भाग्य हमारा भी जागा।

"उड़ जा रे कागा ! जो मेरे भैया आयें,
या बापू ने भेजा हो कोई मनिऑर्डर,
या भाभी के मुन्ना होने का खत आये,
या लक्ष्मी के लायक कोई मिलना होवर।"

गोदी का मुन्नू रोया तो वह गयी लौट,
तब लक्ष्मी लगी उड़ाने कागा को घर से,
वह धीरे धीरे लगी बताने बात नयी,
सुन रहा सभी मैं पड़ा पड़ा उस बिस्तर से।

"यदि आज फर्स्ट में क्लास टैस्ट में आ जाऊँ,
तो कागा तुमको टॉफी चार खिलाऊँगी,
यदि मुझे सुनीता बंगाली जूड़ा दे दे,
तो मुन्नू से दो आइसक्रीम मंगाऊँगी।"

या मुझे पिताजी साइकिल आज मँगा देवें,
अम्मा राजी हों नाइलॉन की साड़ी को,
रेखा को डण्डों से पीटें या टीचर जी,
खा जाय भैंस या सरिता की फुलवाड़ी को।"

"लक्ष्मी, लक्ष्मी" यों कमरे से आयी पुकार,
जल्दी जल्दी लक्ष्मी कमरे में गयी चली,
बारहवर्षी चुन्नू आँगन में खड़ा हुआ,
उसकी बातें भी मुझे बहुत ही लगीं भली।

बोला "हे कागा तुझ से विनती करता हूँ,
तू पकड चोंच में जादू का चिराग ला दे,
या चन्द्रकान्ता के तिलिस्म की चाबी ही,
या किसी देश का मुझको राजा बनवा दे।

फिर भी जब बैठा रहा काग मैंने सोचा,
शायद मेरी ही कोई सूचना आनी हो,
खुलने वाली है आज लाटरी सिक्किम की,
पहली इनाम शायद मुझको ही पानी हो।

'हे महादेव, हे भैरूँजी, हे बालाजी,
सब मिल कर मुझ को केवल बस इतना वर दो,
जो खुले लाटरी सिक्किम की इस संध्या,
उसमें मेरे कूपन के ही नम्बर भर दो।'

मैं उड़ा रहा था आँगन से उस कौवे को,
मन नाच रहा था लिये साड़ियों का बंडल,
खुद के, बच्चों के नये सूट सिल आये थे,
घर भर के नये नये आये जूते चप्पल।

रेडियो सैट, फिर एक कार, सुन्दर बंगला,
क्षण भर में ही सारे मन ही मन नाच गये,
पर जाने क्या था लिखा भाग्य के काग़ज पर,
जो काक देवता उड़ते उड़ते बाँच गये।
बस उसी समय आवाज सुन पड़ी घंटी की,
मैं बाहर दौड़ा अपने मन में हर्षाया,
ज्यों नजर डाकिया आया यह मन नाच
मानो लाखों रुपया हो मैंने भर पाया।

उत्सुकता से सन्मुख लपका भगते-भगते,
इक पैकिट मुझे डाकिया ने पकड़ाया था,
मेरे लेखों का एक संकलन नया-नया,
सम्पादक ने अभिवादन कर लौटाया था!

घर-जाई-तंत्र

*पुरुषोत्तम शर्मा 'मधु'

भारत [illegible] दूध किल्लत से
परेशान हो
परन्तु दूध योजना बनायी
घर में '[illegible]' ने
इक भैंस मँगाई।
भैंस को
गुड़ खिलाओ
पिलाओ
मोटी बनाओ
जब वह ब्याही
मरा हुआ
पाडा लाई।
योजना फेल हुई
चारों ओर से
आवाजें आयीं।
धीरज धरो।
फिर से
[illegible] पैर भारी होने दो।
हैल्दी बनने दो
जापा सुधरने दो।

जापा सुधारते-सुधारते
हैल्दी बनाते-बनाते
वह वैल्दी बन गयी
भैंस से घड़ियाल हो गयी

हरी-हरी चरती है
हर बार
मरा पाड़ा जनती है
प्यारे दूध से
ललचाती है
उल्लू अपना
सीधा करती है
गाय के भेंस
क्या लगती है।
पर पर-जाई-तंत्र क्या
आदर्श पूरा निभाती है !

• •

ओ युवजन !

*नीलकण्ठ शर्मा 'शास्त्री'

ओ युवजन !
सुन रहा हूँ तुम्हारी आवाज,
समझ रहा हूँ तुम्हारा आक्रोश,
क्रान्ति नारों से नहीं,
पसीने से आती है।
वह भाषणों से नहीं,
बलिदानों से आती है।
क्रान्तिहर स्पर्धा के नये मोड़ में है।
हर निर्माण के नये आयाम में है।
क्रान्ति, न अराजकता है,
न आगजनी, न हिंसा, न तोड़-फोड़।
उसका स्थान,
उद्योगों, कारखानों, खेतों में है।
आविष्कारों, निर्माणों में है।
क्रान्ति सुदृढ़ भुजाओं और सुलझे विचारों में है।

••

गुनाह

*मुख्तार टोंकी

बहुत पूज्यनीय,
आदरणीय,
और सम्मानित
यह कल की बात है
मैं एक सज्जन पुरुष था ।
लोग !
आदर से मुझ को
झुक झुक कर सलाम करते थे ।
आज स्वयं ही
अपनी नज़र से गिर गया हूँ ।
दूसरों की बात छोड़ो
उफ़ !
अन्तःकरण फटकारता है ।
आत्मा धिक्कारती है ।
आइने में यह किसकी
आकृति दीखती है
भयावह आकृति
जो पहचानी नही जाती ।
रात ही रात में
यह किसने
मेरे मुंह पर पोत दी कालिख ?

*निरंजन प्रकाश मित्तल 'उल्फ़त'

ये और-और की ख्वाहिश कब,
दुनिया से मिटने वाली है?
बढती ही रहती है हसरत,
हसरत कब मिटने वाली है?

कुछ अर्थ बढाते जाते है,
कुछ देह बढाते जाते हैं;
दम उनका घुटता जाता है—
पर सृष्टि बढाते जाते है।

जिस तरफ नज़र कर देखा है,
बस बढने की ही बाते हैं;
दिन चाँदी के वे समझ रहे,
सोने की उनकी राते हैं।

ले-ले कर खजर बैठे हैं,
उठने का लेते नाम नही,
बस और बढाओ, और बढ़ाओ,
यही काम औ' काम नही।

जो काम करे वह बुद्धू है,
इसलिए नया कुछ हाल करो,
कुछ करना अगर जरूरी तो
हड़ताल करो, हड़ताल करो।

चीजों की तंगी छायी है,
मंहगाई बढ़ती जाती है;
हर तरफ समां है बढ़ने का—
कठिनाई बढ़ती जाती है।

मरण-गीत

*कृष्णदत्त शर्मा

मृत्यु आकर छीन लेगी सांस को—
नष्ट कर देगी मधुर मधु आश को।
फिर न आयेगी सुनहली यामिनी
रह अकेली रोयगी रति कामिनी।
सेज होगी शाप-सी विष नागिनी,
ज़िंदगी पर गिर पड़ी क्या दामिनी ?
तोड़ सकता कौन कटु यम-पाश को ?
रोक सकता कौन आते ह्रास को ?
मृत्यु आकर छीन लेगी सास को—
नष्ट कर देगी मधुर मधु आश को !!
प्रिय प्रिया से दूर होंगे एक दिन,
युग बनेगा उस समय में एक क्षण।
कुसुम यौवन बन चलेगा क्षुद्र तृण,
और अंतर में बनेंगे कूप-व्रण।
अश्रुधारा छीन लेगी हास को,
घन तिमिर ज्यों घेरते आकाश को।
मृत्यु आकर छीन लेगी सास को,
नष्ट कर देगी मधुर मधु आश को !!
याद आयेंगे मधुर अभिसार वे,
चुम्बनों से गहन गीले प्यार वे।
मोद की अनुभूति के आधार वे,
एक होंगे विरह-अवतार वे।
सृष्टि रोयेगी बची उस लाश को,
शांतिदाता चन्द्रमा के ग्रास को।
मृत्यु आकर छीन लेगी सांस को,
नष्ट कर देगी मधुर मधु आश को !!

आह्वान

*शेरसिंह दूर

है मस्तक हिमालय, है सागर चरण में,
यह नदियों से सिंचित, हरित है वरण में।
ये मैदान फैले हैं मीलों में जिसके;
कमल हैं खिले रहते झीलों में जिसके।
था धनधान्ययुत यह कभी देश अपना,
था मधुमास सा दिन औ' संगीत सपना।
'है सोने की चिड़िया' जिसे सब थे कहते,
थे मन लुब्ध जिस पर सभी के ही रहते।
चढ़ कर यहाँ आये शक, हूण सारे,
मिले वे यहीं सब खो निज को विचारे।
जो दसवीं सदी में यहाँ फूट फैली,
हुई सिद्ध इसके लिये अति विषैली।
बुलाया यहाँ उसने महमूद ग़जनी,
गये दिन सुखी, आयी दुखपूर्ण रजनी।
हुआ शान्त वातावरण क्षुब्ध तब से,
हुए त्याज्य हम देव, धरणी व नभ से।
गये ज्ञान धनमान आदिक हमारे,
वे उज्ज्वल चरित, पूत आदर्श सारे।
बहती रहीं सर्वदा अश्रु नदियाँ,
अवस्था इसी में गईं आठ सदियाँ।
जगे भाग्य भारत के तब जाके आखिर,
लगी चेतना कसमसाने ज़रा फिर।
लहर जोश की, त्याग की एक आयी,
पुन: देश की जिसने बिगड़ी बनायी।
बलिरूप में ले अनेकों नरों को,
मिली मुक्ति इसको, हटाकर परों को।

पर स्वार्थ में ही सभी लिप्त रहते ।
ये कुर्सी के कारण परस्पर झगड़ते,
हैं इस भाँति सेवक कहाँ और लड़ते ?
जनहित की सब योजनाएँ हमारी,
हैं रहतीं धरी वे अधूरी क्यों सारी ?
जहाँ सौ में अस्सी हों, खेती जो करते,
उसी देशवासी हैं भूखे क्यों मरते ?
हैं क्यों हाथ परदेश आगे पसरते,
न पानी की चुल्लू में क्यों डूब मरते ?
बढ़ते हैं टैक्सादि, बढ़ती है चोरी,
व भरती ही जाती बड़ों की तिजोरी ।
इधर भाव बढ़ते उधर बढ़ते नारे,
कैसे लगेगी यह नैया किनारे ?
गया देश-हित भाड़ में आज सारा,
व लगता सभी निजी स्वार्थ प्यारा ।
दे भेद अरि को कमाते हैं ये धन,
भला कौन इनसे बड़ा देश-दुश्मन ।
ये लेते हैं रिश्वत नगारे बजा के,
हैं पड़ने लगे दिन दहाड़े ये डाके ।
लुटेरों के आदर्श हैं जिनके आगे,
वहाँ धन को कैसे, कहाँ कौन त्यागे ?
नहीं राजा कोई है सारी प्रजा अब,
भला कौन अपनों को देवे सजा अब ?
इन्हें त्याग गांधी का मोडेगा कैसे ?
अकेला चना भाड़ फोड़ेगा कैसे ?
नहीं स्वार्थ यदि राष्ट्रहित बलि चढ़ेगा,
भला देश आगे यह क्यों कर बढ़ेगा ?

× × ×

सुनो नौजवानो ! है यह काम तुम्हारा,
तुम्हीं हाथ में लो अब झंडा हमारा।
नहीं राष्ट्र बनते हैं केवल कहीं से,
नहीं नाम होता मुरीदे करने से।
हैं वीरों से ही देश उनके बनाते,
जहाँ पर हों वीर है लहराते।
उन्हीं से सुगम पर्वतों पर निशाने,
उन्हीं से सुगम राष्ट्र फिर से निशाने।
वतन तो नहीं काम करने से होता,
वतन आगे बढ़ कर के करने से होता।
वही देश उन्नति शिखर को है पाते,
जहाँ राष्ट्र-हित वीर हैं सिर कटाते।
जिस भूमि में वीर हो पूरा जाता,
वह बलिदान ही है जो ऊँचा उठाता।
निजी स्वार्थ को छोड़ करके किनारे,
लगे राष्ट्र-हित कार्य में प्राण सारे।
जिधर भी हमारा कदम जम पड़ेगा,
है किसमें यह ताकत जो आगे बढ़ेगा ?
जहाँ नवयुवक हों खड़े सीना ताने,
वहाँ शत्रु लगता स्वयं दुम दबाने।
गीदड़ को कुत्ता भी है घर दबाता,
कहो सिंह को कौन है कब सताता ?
हमें है कमर कसके तैयार होना,
यह भारत मही फिर तो उगलेगी सोना।
धन-धान्य विज्ञान भरपूर होंगे,
हमारे सभी कष्ट काफूर होंगे।
यों धरती का हर राष्ट्र ऐसा कहेगा,
कि भारत जगद्गुरु रहा है, रहेगा।

सृजन के विराम-चिन्ह

(छोटी कविताएँ)

अनुभाग दो

सांवर दइया, यमुनाशंकर दशोरा, मुख्तार टोंकी, जगदीश विमल, केरोलीन जोसफ, अर्जुन अरविन्द, ब्रजमोहन द्विवेदी, जगदीश उज्ज्वल, मनमोहन झा, पुरुषोत्तम 'पल्लव', कुन्दनसिंह 'सजल', वासुदेव चतुर्वेदी, जगतनारायण, गणेश तारे, दमयन्ती शर्मा, रमेश भारद्वाज, मूलचन्द हंस गजानी, कैलाश शर्मा 'मनहर', मोहनसिंह 'मृगेन्द्र' और त्रिभुवन प्रसाद 'विद्यार्थी'।

सृजन के विराम चिन्ह

कई छोटी कविताएं तो । क्षणों में प्राप्त मन.स्थितियों का ही रूपांतर करती हैं, पर कई लघु कविताएं क्षण का अतिक्रमण कर शाश्वत सत्य का उद्घाटन भी कर देती हैं। क्षण की मन स्थिति का चित्रण करने वाली छोटी कविताएँ बेशक 'क्षणिकाएं' कही जायें, पर सुसंगठित लघु कविताएँ, जो चिरन्तन मूल्यों का दिग्दर्शन कराती हैं, क्षणिकाएँ नहीं कही जा सकतीं। इसलिए हर छोटी कविता को 'क्षणिका' कहना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। क्षणिका किसी काव्य-गर्भित क्षण में भाव-स्थिति की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति करती है, लेकिन हर छोटी कविता की अनुभूति क्षणिक संस्पर्श तक ही सीमित नहीं रहती। जापान की हाइकू रचनाएँ, एजरा पाउण्ड और शमशेर की बिम्ब-प्रधान छोटी कविताएँ, अपने कला-सौष्ठव के उपरान्त भी, क्षणों का स्पर्श करने वाली मार्मिक, चित्रात्मक उक्तियाँ हैं, इसलिए वे 'क्षणिकाओं' के आस-पास की रचनाएँ हैं; लेकिन नागार्जुन की अकाल पर लिखी गयी छोटी कविता क्षणिका नहीं है। इसी तरह अज्ञेय और एमिलि डिकेन्सन की छोटी कविताएँ क्षणिकाएं नहीं हैं, क्योंकि उनका भाव-बोध काल की सीमा का अतिक्रमण करता हुआ चिर नूतन, चिर शाश्वत सत्य का अनावरण करता है।

इससे हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि सुसंगठित छोटी कविताएँ, अपने भाव-बोध की गहरी व्यापकता के कारण मानवीय संवेदना के शाश्वत मूल्यों का अन्वेषण करती हैं। वे छोटी अपने आकार में हैं, क्योंकि अपनी सुदृढ़ संगठनात्मकता के कारण वे शब्द के अपव्यय से बचती हैं। ये छोटी कविताएँ कला और भाव के सृजनात्मक लोक में बहुत बड़ी कविताएँ होती हैं, क्योंकि थोड़े में बहुत-कुछ कहकर वे गागर में सागर भरती नज़र आती हैं। शब्द का इससे बढ़कर सशक्त प्रयोग और कहाँ सोचा जा सकता है ?

छोटी कविताएँ कवि की अनुभव-सम्पदा को संश्लिष्ट रूप में, कलात्मक संगठन-क्षमता के साथ, प्रस्तुत करती हैं, और अपनी मूल्य-गत शाश्वतता के कारण देश, काल तथा पात्र की सीमाओं को तोड़ती हैं।

छोटी कविता और क्षणिका के इस बुनियादी फ़र्क को समझते हुए पाठक स्वयं अपना निर्णय लें कि प्रस्तुत संकलन में किस कविता को क्षणिका कहा जा सकता है और कौन-सी कविता क्षण की सीमा-रेखा से अछूती एक सशक्त छोटी कविता है।

ंख-नुची चिड़िया और आकाश

*सांवर दइया

अपनी ही भूल
या विवशता
या सांसों की निरन्तरता के लिए
आदमी की
बाँहों में पसीज कर छूटी
अपना जिस्म सम्भालती
औरत महसूसती —
कि वह उस पंख-नुची चिड़िया की
मानिन्द —
जिसे यह हुक्म दिया गया है—
उड़ो····उड़ो····
सारा आकाश तुम्हारा है !

• •

बिच्छू

*यमुना शंकर शर्मा

बिच्छू,
डंक मारता है—
अपना पेट भरने के लिए नहीं,
दूसरों को सताने के लिए,
क्योंकि,
इसी में उसे सुख मिलता है।

कीड़े

कीड़े,
गन्दी नाली के बदबूदार पानी में प्रसन्न हैं,
क्योंकि,
वही उनका जल और अन्न है।
स्वच्छ स्थान पर वे मर जाएँगे,
षट्रस भोजन को छुएँगे नहीं,
'टीं टीं' करेंगे तो भी गन्दगी ही खायेंगे।

मक्खी

मक्खी,
भिनभिनाती है,
एक स्थान की गन्दगी दूसरे स्थान पर लाती है,
साफ वस्तु को गन्दा करती है,
दिन रात यही धन्धा करती है,
नीरोगी को रोगी बना देना
उसका स्वभाव जो है ?

मुख्तार टाक

रात की अनुपम वेला में
किरणों की सुन्दर सीढ़ी से
जैसे चांदनी
धरती पर उतरती है।
इन्द्रधनुषी रंगों में
होंठों पर
मुस्कानों का उपहार लिये
जैसे कोई अप्सरा
स्वर्ग से गुज़रती है।
सोचता हूँ,
इसी तरह से
कवि की कल्पना के सुन्दर पटल पर
अनायास
कोई कविता उभरती है
और फिर
दुल्हन की तरह
शब्दों के आभूषणों से संवरती है।

••

मिनी कवितायें

*जगदीश विमल

अपने से हट कर,

सब पर आक्रोश

चहरे पर कालापन

दर्पण को दोष।

सूर्य उग कर,

छप गया है कागजों में

पर अँधेरे

और गहरे हो गये हैं

और उत्तर

और बहरे हो गये हैं

आदमी के

लाख चहरे हो गये हैं।

दर्द भरे सन्दर्भ

*कैरोलीन जोसफ़

सुनो हवा !
मैं तुमसे कहती हूँ—
बेवक्त हौले से
न सहलाया करो मुझे।
पीले फूल !
भला यूँ भी कोई चुभती हँसी
हँसी जाती है ?
ओ भूले बिसरे चरवाहे !
अपने गीत से सुर बदल दो—
बेमौसम की बदली छाई हुई है
मौसम बेहद दर्दीला है
न दो....
न दो....
न दो मुझे
दर्द भरे—
कई सन्दर्भ !

मोमबत्ती

•केरोलीन ओसउ

जिसने
मोमबत्ती-सा जिया हो
उसकी भी क्या कथा ?
सिवा इसके कि
मस्तिष्क सुलगता
अन्तस् पिघल……पिघल
　　रिस……रिस
　　　　बहता
जिसकी ज़िन्दगी
एक दीप्त मौन व्यथा
बोलो
उसकी भी क्या कथा ?

श्रम के इतिहास

•प्रद्युम्न 'पारिजात'

हम अंधेरे में रहने के आदी हैं।
कितने अंधविश्वासी हैं!
घिसे पिटे संस्कार,
कुण्ठित विकल्प
ढोते पीढ़ियाँ खो गयीं,
फिर भी
हमारे मन कितने बागी हैं !
साथी !
अंध बासी परम्पराओं को तोड़ डालें।
पसीने की स्याही से
लिखें श्रम के इतिहास,
उजाले के बीज बो डालें !

स्थिति

*ब्रजमोहन द्विवेदी

एक टाँग पर खड़ा है पेड़
सुदृढ़,
सुस्थिर ;
और इन्सान—
दो टाँगों पर भी
लड़खड़ाता जा रहा
अनजान राहों पर।

मसीहा का संकेत

दिल में इतना दर्द है कि
पत्थर पिघल जाये
इतनी आग है—
संसार जल जाये,
इतना ज्वार है
समन्दर उछल जाये ;
पर करूँ क्या ?
सलीब पर लटके हुए
मसीहा ने मना कर दिया।

क्षणिकाएँ

*जगदीश उज्ज्वल

आम की गुठली से
फिसल जाते हैं
रस भरे
सुख के दिन
और
रस रहित
छिलके से
बच जाते है
दुर्दिन
जिन्दगी के
गमगीन-हाथों में

× ×

एक थीं शाम
राही बहक गया
एक थी शाम
गन्तव्य पा गया
शाम का क्या दोष
राही आज
असली पते पर
आ गया

× ×

जिन्दगी भर
दिया
जिया-फटे चियड़ों को
        वार वार—
        सिया
            वह दर्द
            तुम्हारा था
            या मेरा
            जिसे दोनों ने
            विवश पिया

× ×

मेरे इर्द गिर्द
एक मेंहदीली गंध का
मौन मुखर आमंत्रण
        सहज
        समर्पण की रेखा
        उभरी—
        शायद—
        हुई सुहागन

फ्लर्ट रात

*मनमोहन भ

पसीने से
लथ-पथ बेचारा
थका हारा सूरज
ओवर टाइम कर के घर चला गया है,
और
इतराई रूपगर्विता
फ्लर्ट रात
चाँद का वेनिटी-पर्स झुलाती
सितारों वाली पारदर्शी साड़ी पहने
बेखौफ़ घूम रही है।

क्षणिकाएँ

*पुरुषोत्तम 'पल्लव'

पतझड़

वृक्ष से रूठ कर पात
धरा पर बैठ गये !
वह मानता नहीं
ऊपर से बोला—
तुम नहीं तो····
तुम्हारे भाई दूसरे आयेंगे !

घूँघट

चाँद बहुत शर्मीला,
इसीलिए कभी-कभी
बादल को खींच,
घूँघट निकाल लेता है !

कसम

कभी-कभी कसमें
खाने को जी चाहता है,
खूब कसमें खाकर
देखता हूँ,
जिनकी कसमें खायी
वो अभी तक जिन्दा हैं !

मर्द और मुर्दा

श्मशानों की राख
उड़-उड़ कर
उन दकियानूसी
लोगों पर
अपनी तहें जमाती
कह रही है—
जीना हो तो
मर्दों की तरह जियो,
मुर्दों की तरह नहीं !

••

दौड़

*कुन्दन सिंह स

कहीं और कभी
बड़ी कुर्सी को खाली देखकर
छोटी कुर्सियों में लग जाती है होड़ ।
और उसे पाने के लिए
ये सभी बेतहाशा
करने लगती हैं, दौड़ ॥

रचना

'सम्पादक के अभिवादन तथा खेद सहित'
का कलंक लेकर
रचना लौट आई, लिफाफे में बंद ।
जैसे कुँवारी ही रह गई हो
कोई लड़की होकर नापसन्द ॥

सम्पादक

कुछ आलोचक
कुछ लेखक
कुछ पाठक
कुछ कुछ याचक ।
इन्हें मिलाया
एक जगह, तब
टोटल आया, सम्पादक !!

ऑफिस

*वासुदेव चतुर्वेदी

ऑफिस !
एक सर्कस है,
जहाँ रिंग मास्टर,
कलम के कोड़े से,
सब को नचा रहा है।
कलम के कोड़े मारे जा रहे हैं,
एक दूसरे की पीठ पर।
कागजी घोड़े दौड़ रहे हैं,
इस टेबुल से उस टेबुल पर।
रिंग मास्टर बेखबर है,
क्योंकि यहाँ का हर जंतु,
रिंग मास्टर बन कर—
सर्कस चला रहा है।

चपरासी

वर्दी पहन लेने के बाद
वह अफसर है।
नाटक तो करता है—
काम करने का,
पर करता नहीं है।
बड़े अफसर के कान में
फूँक मार कर
अपनी तूती बुलवाता है।
अपना उल्लू सीधा कर
उसे भी पता बनाता है।

क्षणिकाएँ

*रविशंकर भट्ट

आधुनिका

घूर जिनका नाम लेकर
बांधते थे कमर पेटी
कैबरे में नग्न नाच रहे हैं
आज उनके बेटे-बेटी ।

आदमी

आज
आदमी में आदमी,
एक बाहर
एक अन्दर ।
दो मिलकर
बन गया एक आदमी ।

चमचा

मक्खन मलता,
मिलकर चलता,
नेता और अफसर के बीच
पहुँचाता हर चीज,
कुर्सी के अभाव में भी
यह महाभाव
चलता हर घड़ी
बिना सुइयों की घड़ी
बीच की कड़ी !

रूखी रोटी

*गणेश तारे

क्या तेरी
परिधि थी विस्तृत
या घेरा
छोटा
दुनिया का,
जो सारी दुनिया
घूम घूम कर
तेरे खातिर
भ्रष्ट हो गयी,
भटक भटक कर
आखिर
थक कर
तुझ में ही केन्द्रित
हो बैठी
धन्य धन्य हो
महिमा तेरी
दो वक्त की
रूखी रोटी ।

••

बालदिवस

*मनमोहन झा

लड़कियों!
बाल बढ़ायें ।
लड़के
बाल बढ़ायें ।
आओ !
हम सब एक होकर
बाल दिवस मनायें !

••

ट्वेन्टी फाइव परसेन्ट

*जगत मा

चौराहे पर खड़ा सिपाही
ताला तोड़ रहा है चोर
उन दोनों के बीच खड़ा हो
लाला मचा रहा है शोर।
कहा सिपाही को लाला ने
"भैया जाकर पकड़ो चोर"
"भरी दुपहरी करता चोरी"
कभी नहीं यह होगा चोर,
शासक दल का एम. एल. ए. हो
या निश्चय ही मन्त्री होगा।
इसे पकड़ लूंगा तो मुझ को
कल ही डिसमिस होना होगा।
कहना मानो जल्दी जाकर
आधे पर समझौता कर लो,
उस आधे में आधा हिस्सा
मेरा भी तुम शामिल करलो,
खड़े खड़े क्या देख रहे हो
सारा माल चला जाएगा
जल्दी जाओ तुमको, मुझको
चौथा हिस्सा अभी-अभी ही
खूब बराबर मिल जायेगा।

अकाल

*जगदीश विमल

गुरु जी अपने शिष्य को
मँहगाई और काल का सम्बन्ध
समझाने लगे थे —
जब मँहगाई पैरों चलना सीखी थी
तब था भूतकाल —
और जब वह मैदान मार रही है
तब है वर्तमान काल —
और फिर वह सूरज के सर पर बैठेगी
तब होगा भविष्यत काल ।
इसके पश्चात्—शिष्य ने जिज्ञासु होकर कहा—
गुरू ने घोषणा की—
"अकाल"

••

सब कुछ भूल गया

*दयावती शर्मा

धधकती रोटियों के साथ जब बस का प्याज दिया ।
तब मोतीचूर के लड्डू का स्वाद भूल गया ।।
गुड़ की डली के साथ जब ठंडे पानी का गिलास दिया ।
तब रूह अफ़जा की ठंडक भूल गया ।।
रोमांस और प्यार की रिहर्सल भूल गया ।
जब भूखे पेट ने विद्रोह कर दिया ।।
सब कुछ भूल गया करुणामयी, जब तुमने
भूखे रहकर मुझे अन्नदान दिया,
स्नेहदान दिया और जीवन दान दिया ।।

••

बन्द कपाट

*रमेश भारद्वाज

उन लाल-लाल
गेरू रँगे कपाटों को,
जो जड़ हैं,
किसी मूर्ति से,
फिर भी रखते हैं
अस्तित्व अपना;
उन्हीं कपाटों को
जो तुम्हें अपने अन्तर में,
रखते हैं,
किसी योगी के राम सी;
खटखटा कर
निष्फल-निरन्तर,
हर बार - हर बार
मैं कूल से टकराने वाली
लहरों सा,
लौट-लौट जाता हूँ।
पर वे कपाट हैं कि
ब्रह्म की माया?
खुलते ही नहीं, खुलते ही नहीं।

अनुभव

*[illegible] नारायण

"वान्टेड कॉलम" देख हमने अनुभव की है सबमें धूम
[illegible] में बैरिस्टर तक किन "एक्सपीरिएन्स" कहीं न "कम"
टीचर, वायु इंजीनियर, डाक्टर और [illegible] चाहिए
इनके [illegible] को अनुभव पांच वर्ष "एट लीस्ट" चाहिए
लेकिन जीवन का जो सबसे महत्वपूर्ण आवश्यक काम
उस कार्य के लिए न कोई लेता है अनुभव का नाम।

विकलता

*रमेश भारद्वाज

जैसे हो रहा हो सागर-मंथन ।
अनबोली गहराइयों में
प्रलय भँवर आ रही हो ।
अब मर ही जायेगा ।
नष्ट-भ्रष्ट ।
प्रथम प्रणय सी—
अनबूझ पीड़ा ।
अनजानी व्याकुलता की विवशता,
आ टपकेगी—
फूल पर,
शीत-कण ।
अति सुन्दर-मधुर,
कुछ अपनाया, अनचहा ।

••

सापेक्ष

*विश्वम्भर प्रसाद शर्मा 'विद्यार्थी'

हर मुस्कराता चेहरा
किसी दुःख की है दुर्घटना ।
हर सलोनी सूरत
किसी शोषण की है दुर्गंध ।
प्यार तो
अपने अभाव की है पूर्ति,
स्वयं के स्वाद का पोषण ।
अन्धकार की चरम परिणति
प्रकाश का पहरा,
क्षण-क्षण में सम्बन्ध
कितना है गहरा ।

जीवन

*कैलाश शर्मा 'मनहर'

जीवन है एक जंजीर,
जिसमें अनेकों पीर ।।
एक दाग
एक राग
एक दाह
एक चाह
नयन से बहता नीर ।
जीवन है एक जंजीर ।।
एक त्याग
एक आग
एक रोग
एक भोग
जैसे जलद गम्भीर ।
जीवन है एक जंजीर ।।

तीन क्षणिकाएं

*कैलाश शर्मा 'मनहर'

१. दुनिया
एक बहती नदिया,
ऐ मानव !
इसमें बह गये,
तेरे मेरे रूप अनेक ।।

२. शिक्षक
जिसके भाग्य में लिखा है
जलना ।
ताकि
और को प्रकाश मिलता रहे ।।

३. घर में, दो बर्तन
बजते ही रहते हैं।
इसीलिए
उनके घर के
खाली आटे दाल के कनस्तर
बज रहे हैं॥

क्षणिकाएँ

*मोड़सिंह

कर्म-पुरुष

कर्मपुरुष को
सुबह नहीं जगाती
शाम नहीं सुलाती
बल्कि वह
सुबह को जगाता है
शाम को थपथपा—सुलाता है।

लौह-पुरुष

लौह-पुरुष को
नहीं रोक सकती दीवारें
क्योंकि वे स्वयं दीवार होते हैं।
भय नहीं रुला सकता
कि तूफान उनके सामने रोते हैं।
परिस्थितियाँ काँप-काँप जाती हैं,
क्योंकि लौह-पुरुष, लौह-पुरुष होते हैं।

मिसफ्यूज

कहते हैं
आजकल
हमारे देश में
मिसफ्यूज होता है
झूठ
'भगवान' के घर
बिजली का लट्टू
क्या कभी
फ्यूज होता है।

डर

युद्ध होते हैं
लड़ाइयाँ होती हैं,
वाक्‌युद्ध भी,
मगर सब
औरों से होते हैं,
स्वयं से नहीं।
शायद लोग
ऐसा इसलिए करते हैं
कि—
औरों से कम
अपने आप से ज्यादा डरते हैं।

डूबती किरणें

•आशीष मिश्र

डूबती किरणों की तूलियों से
गीले गीले
चंचली रंगों से
कोरे कागज पर
खींचे
अनेक अनेक चित्र।

पावस की आँखों पर
एक पूरा इन्द्रधनुष।
समुद्र में तैरते दूरस्थ पोत।
सूखे रंगों के पहाड़।
नयी पुरानी शैली के
बहुत से मकान,
बंगले-बगीचे।
रक्ताभ अंजुरियों से
नीलम पुखराज उछालती
एक शाम।

राग–प्रतिमाएं*

(गीत)

अनुभाग

---

* मदन डागा, बलवीरसिंह 'करुण', धावरा, गोपाल प्रसाद मुद्गल, मनमोहन झा, प्रकाश शर्मा, सत्यपाल भारद्वाज, जयसिंह चौहान 'जौहरी', कुन्दनसिंह सजल, गौरीशंकर आर्य, अर्जुन 'अरविन्द', भगवतीप्रसाद गौतम, ब्रजराज भाल सुरेन्द्र पारीक 'दिनकर', रामस्वरूप 'परेश', रामनिवास सोनी।

राग-प्रतिमाएँ

गीत : एक सम्भावना

जो लोग गीत की मृत्यु की घोषणा कर चुके हैं, उन्हें अपनी आवेग-पूर्ण उद्घोषणा पर पुनर्विचार करना चाहिए। कविता की बौद्धिक यान्त्रिकता के दबाव से राहत पाने के लिए गीत आज भी एक जीवित सम्भावना-सा दिखायी देता है। जिसने प्रसाद-पन्त-निराला-महादेवी से अपनी शोभा-यात्रा प्रारम्भ की; जो बच्चन-नरेन्द्र शर्मा-धर्मवीर भारती-भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार, वीरेन्द्र मिश्र, केदारनाथ सिंह के हाथों परिपक्व हुआ; तथा जो बालस्वरूप राही, सर्वेश्वर, कैलाश वाजपेयी, उमाकांत मालवीय, नीरज, दोषी, त्यागी, ठाकुर प्रसाद सिंह, नईम, देवेन्द्र कुमार, ओम प्रभाकर तथा रवीन्द्र भ्रमर जैसे नये कवियों द्वारा सँवारा-सजाया गया, वह गीत न मरा था, न मरेगा। गीत नहीं होगा तो ज़िन्दगी की ऊब और घुटन से मुक्ति कौन दिलायेगा?

गीत आदमी की सुकुमारता की अभिराम अभिव्यक्ति है, वह मन का आह्लाद-पूर्ण प्रस्फुटन है। राग-विराग, हर्ष-विषाद तथा प्रकृति-प्रणय की अनुभूतियों की कोमलतम अभिव्यक्ति गीत के द्वारा ही सम्भव है। शुष्क प्रबुद्धता तथा मानसिक तनाव से आदमी का उद्धार करने वाली विधा गीत है। संस्कृति के राग को संगीतमय रखने वाला गीत, मौसम-ऋतु-त्योहार में उमंग जगाने वाला गीत, लोक-धुनों, लोक-मानस में रमा-बसा गीत; धूप-छाँह, मेघ-धनुष और सागर-लहरों वाला गीत कविता के किसी भी आन्दोलन से न मरा है, न मरेगा। गीत आदमी के मन की सूक्ष्मतम पावनता है।

गीत अगर सम्भावना नहीं है, तो गीत की धुन पर व्यक्ति क्यों थिरकने लगता है? स्वर-लय-ताल-राग वातावरण को सरस क्यों बना देते हैं? आदमी के मधुरतम स्वर में पीड़ा और सुख की संगीतमय अभिव्यक्ति गीत के अतिरिक्त क्या है?

नयी कविता की स्थूल औपचारिकताओं ने गीत के अस्तित्व को नकारने की भूल की है। धीरे-धीरे नयी कविता के पुरोधा भी गीत की संवेदनात्मक रागात्मकता को स्वीकार करने को बाध्य होते दिखायी दे रहे हैं। गीत हमारी आन्तरिक विवशताओं को लय-बद्ध करता है। इसलिए गीत एक अनश्वर

सांस्कृतिक धरोहर है। नयी कविता के वे हिमायती, जो गीत के नाम से ही कानों पर उंगली रखते हैं, अपने दम्भ-वश आदमी के चिर-शाश्वत राग-इतिहास से अलगाव घोषित करते हैं। तमाम आर्थिक नाकेबन्दियों के बावजूद, अजनबीपन और मनहूसियत के उपरान्त भी जीवन जीवन है। वह कभी भी रसिकता-सरसता-कोमलता-करुणा से विरक्त नहीं होता। महानगरीय यन्त्रणा से संत्रस्त व्यक्ति की मुक्ति के लिए गीत एक अनिवार्यता है। नयी कविता के जोशीले प्रवक्ताओं को गीत की यथार्थवादी रूपाकृति की माँग करनी चाहिए।

यथार्थवादी गीत आज के जीवन की विसंगति-विषमता तथा अंतर्विरोधों का वाहक होगा। उसकी नयी शब्द-योजना होगी और समकालीन जीवन के अनुरूप अर्थवत्ता होगी। नयी कविता के प्रभाव में नया गीत पारम्परिक औपचारिकताओं से स्वतंत्र होता जायेगा। वह कृत्रिम भाषा तथा अनावश्यक तुक-जाल से भी बचेगा। गीत आदमी की संवेदनशील चेतना का संस्पर्श करेगा। आज जब जिन्दगी का धरातल ही खुरदरा है तो नया गीत एक तरह की खुरदरी भाषा में जीवन की रोजमर्रा खानगी की अभिव्यक्ति बनेगा। नया गीत निरासक्त, असम्वादी भाषा में गृहस्थ सन्दर्भों और राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक तनावों को रचने वाला गीत होगा।

प्रस्तुत संकलन में दो तरह के गीत हैं। एक किस्म का स्थापत्य पारम्परिक है, दूसरी तरह का गीत भाषा तथा सृजन के स्तर पर नया और यथार्थवादी है। कविता का हर जागरूक पाठक दोनों किस्मों को भिन्न-भिन्न रूपों में पहचान सकता है। यह निर्णय पाठक की चेतना पर ही आश्रित है कि कौन-सा गीत नया है, और कौन सा पारम्परिक!

गीत

•मदन पार्थ

यह माटी कुंकुम की हो या चन्दन की
श्रम सीकर से सिंची नहीं तो माटी ही रह जायेगी।
बात हमारी मधु की हो या अमृत की
कर्म-साधक में ढली नहीं तो बात ही रह जायेगी।
उपासनाएँ दिशि पूर्व या नील गगन
संकल्पों से बंधी नहीं तो बातें ही रह जायेंगी।
सत संस्कृति का मान करें या गुण वन्दन
आज सभ्यता भटक गयी तो विकृति ही रह जायेगी।
आजादी होठों पर हो या वोटों पर
जनहित पर यदि नहीं टिकी तो नाशादी रह जायेगी।
राष्ट्र-पताका आरोहो या लहराओ
जो प्रति निष्ठा नहीं रही तो धज्जी ही रह जायेगी।

तुम !

•गौरीशंकर आर्य

तुम हो कामना अब और की होने नहीं देती।
तृषा को तृप्ति के जल से कभी धोने नहीं देती ॥

(१)

तुम्हारा रूप धानी चीर में यह कल्पना लाया,
कि ज्यों श्यामल जमीं से शस्य का अंकुर निकल आया।
कि यमुना के हृदय पर सुरसरी को आज देखा है
तुम्हारे कुन्तलों के बीच वह सीमान्त-रेखा है।

जहाँ सौभाग्य का सिन्दूर संगम-स्नान करता है,
मिलन का पर्व, तन का और मन का ताप हरता है।

ये रति के द्वार ये महराव धनुपाकार भौंहें दो,
प्रतिष्ठित मध्य में मंगलकलश सौभाग्य बिन्दी जो।।

जलधि पर चाँदनी, शुभ चाँदनी पर सीप होता है,
यहाँ तो चाँदनी पर सीप उसमें सिंधु सोता है।

क्षितिज पर आ मिली संध्या-उषा की लालिमा जैसे
मिलन अनुराग से रंजित हुई—दोनों अधर ऐसे ।।

शलभ की भस्म, सुमनो की शिरा, ले ओस का पानी
चितेरे रच नही पाये तुम्हारा चित्र कल्याणी।

तुम्ही से धन्य हो इति कर गयी रचना विधाता की,
मधुरिमा और सुषमा अब कहाँ क्या रह गयी बाकी ।।

नये उपमान का अब जन्म तुम होने नही देती
तृपा को तृप्ति के जल से कभी धोने नही देती।

(२)

तुम्हारे अश्रु तमसा-तट प्रथम शुभ काव्य बन आये
तुम्हारे ही विरह ने मेघ से सन्देश पहुँचाये

तुम्हारी वेदना पावस निशा में आग भरती है,
मधुर मुस्कान ही तो इन्द्रधनु-संधान करती है ।।

तुम्हारी एक चितवन का अगर वरदान मिल पाता
बरसते मेघ मरु पर, यज्ञ यह सम्पूर्ण हो जाता।

नहीं·······मैं भूलता हूँ, सिद्धि तो है अन्त पूजा का
अमर आराधना है, विरह पर्यायी अमरता का।

इसी से कल्पना ही में रहो तुम कामिनी मेरी
संयोगी ही रहेगी चिर वियोगी यामिनी मेरी

सँजोये स्वप्न को साकार कर सोने नही देती
तृपा को तृप्ति के जल मे कभी धोने नही देती।

••

सुधियों की गोद
जैसे उजाले में
जलता दि
जो भी कि

सांसें [illegible] है [illegible]
जैसे उजाले में जलता दि

अभी नहीं, [illegible]
उगती नहीं, हाथ में हाथ है

मन ने ऐसा [illegible]
जैसे उजाले में जलता

किसी ने पुकारा कदम चल पड़े,
उलझन ही उलझन में उलझे पड़े,
दर्पण दिखाया किनारा किए
जैसे उजाले में जलता दिया""

चिन्तन की चितवन अभी दूर है,
अग्नि की भाषा भी मजबूर है;
फर्ज होता है क्या शौकिया ?
जैसे उजाले में जलता दिया""

हकीकत भरे स्वप्न हैं हमसफ़र,
इन्सानियत से बंधी ये नज़र,
दामन फटा चेतना का सिया,
जैसे उजाले में जलता दिया,

सुधियों की गोद में ऐसे जिया,
जैसे उजाले में जलता दिया।

झील के तट पर कुमकुमाती सांझ

*मनमोहन झा

पहाड़ी झील के तट पर
एक कृष्णाभ प्रस्तर-खण्ड पर बठो
स्फटिक मूर्ति-सी तुम
एक विह्वल गीत गुनगुनाती हो
नीलाभ ग्राकाश मे
लयवद्ध स्वर किश्तियाँ
हंसों की तरह छोड़ दी जाती है
स्वर्णाभ सूरज के नाम
ग्रौर सूरज
ग्रपने किरन-हाथों से
एक-एक किश्ती को सहलाता है
प्यार से, ममता से ।

यदि स्वर
रंग होते""तो
झील पर एक हल्का-सा
संवेदनशील इन्द्रधनुष
थिरकता नज़र ग्रा सकता था
मेरी मयूरपंखी दृष्टियाँ
मांसल होकर नामालूम तरीके से
तुम्हें ठेठ भीतर तक सहला जाती हैं
तब तुम
एकाएक कुमकुमा जाती हो
ग्रौर मैं
कुमकुमी सांझ को निहारता रह जाता हूँ
लबालब रत्न-कलश
लगातार
उंडेलता है ग्रमृत !

तुलसी के प्रति

*बलवीरसिंह 'करुण'

धन्य हो गया दिन वह पावन
धन्य हो गया क्षण ।
एक अमर मधुमास कि उतरा
हिन्दी के आँगन ।।

गन्धवती हो गयी मुकुल सी,
हुई सपूती जननी हुलसी,
सरस्वती माँ स्वयं पधारी—
नाम दे गयी उसको तुलसी ।

सदा सुहागिन बनी उसी दिन
कविता की दुलहन ।

मूर्त्त हुई वेदों की वाणी,
गीता की गंगा कल्याणी,
एक दिव्य आभा में न्हाये—
भूमण्डल के आतुर प्राणी ।

सप्त स्वरों ने किया ललककर
उसका अभिवादन ।

वैतालिक मिल गया धर्म को,
नूतन माध्यम गीत-गंध को,
रसवन्ती हो उठीं हवाएँ—
संरक्षक मिल गया छन्द को ।

युग-वीणा की मृदु सरगम पर
गूँजी रामायण ।

आस्था

*गोपाल प्र

जो रहें चमन मे रहें, खुशी, किस्मत वाले,
मैं वीराने में, खुद ही चमन बुला लूँगा।
है मुझे भरोसा, बहुत रोशनी दिल में है,
मैं अंधियारे में सौ-सौ दीप जला लूँगा॥

कब तक आयेगा काम समर्थन भीड़ भरा,
जिसको अपने पाँवों पर खुद विश्वास नहीं।
जिनका खंडित भूगोल, पंगु इतिहास रहा,
उनसे क्या आ सकती है मंजिल पास कहीं ?
जिनके आँगन मे शाम खुशी से वे झूमें,
मैं अंधियारे को पीकर सुबह बुला लूँगा॥

जो स्वाभिमान की होली अपने हाथ जला,
लायें दीवाली रोज, मुझे क्या आकर्षण !
जो बजें पराई फूँक, पराये पाँव चलें,
क्या उनको करूँ प्रणाम, मुझे क्या आकर्षण !
जो पढ़ें खुशामद-गीत गुलामी की गाथा,
मैं युग से खुद अपना इतिहास लिखा लूँगा॥

हर गली, मोड़, चौराहे पे आवाजें दे,
जो केवल लेबिल पर व्यापार चलाते है।
मैं तो फौलादी सोना लेकर बैठा हूँ,
ग्राहक खुद आ, बढ़ बढ़ कर मोल लगाते हैं।
जो मुँह ताकें, नभ चरन परें गुन मे सोयें,
मैं अम्बर को चरनों मे स्वयं झुका लूँगा॥

दिन हुए खजूर से

*कुन्दन सिंह सजल

रातें हुई बौनों सी, दिन हुए खजूर से ।
जून में शिकार हुए, दागी हुजूर से ।।
धूप का कर्फ्यू है, बस्ती में, जंगल में ।
छाँव है, भूपों-से लुटेरों के चंगुल में ।।
ऐंठी है, अफसर सी, दुपहरी गरूर से ।
रातें हुई बौनों सी, दिन हुए खजूर से ।।१।।

आँधी, अफवाहों सी, सभी कहीं उड़ती है ।
दरिया दिल नदी, तंग दिलों-सी सिकुड़ती है ।।
यहाँ वहाँ रेत ढोते, बगूले मजूर से ।
रातें हुई बौनों सी, दिन हुए खजूर से ।।२।।

सूख गये ताल सभी, चिंतातुर रोगी से ।
तपते है पच धूनी, वृक्ष, मौन योगी से ।।
फूहड़ सा रहता है, मौसम बेशऊर से ।
रातें हुई बौनों सी, दिन हुए खजूर से ।।३।।

भवनों में कैद नगर, पक्षी-सा हाँफ रहा ।
सड़कों पर समय नग्न पत्ते-सा काँप रहा ।।
पेड़ों पर किरण-यूथ, चढ़ गये लंगूर से ।
रातें हुई बौनों सी, दिन हुए खजूर से ।।४।।

दिन बीता

*आशा शर्मा

दिन बीता पर रात न आयी।
छाया तेरा नशा नयन पर, राम दुहाई।
चन्दा देखूँ मुखड़ा दीखे,
रात अंधेरी आँखें तरसें।
सावन भीगूँ बूंद न परसे,
प्रिय वसन्त में फूल न महके।
यह माया मैं समझ न पायी, राम दुहाई।

सपने झूमें प्यासे नयना,
तारे टिम-टिम देखें झप झप।
मैं शरमाऊं क्या कह पाऊँ,
तुम हो दूर कहाँ से लाऊं ?
कहो प्रीत मुझ पर क्यों छायी, राम दुहाई।

रात चाँदनी तन मन न्हाए,
क्या तृण क्या तरु डाली झूमे।
अम्बर डोले पृथ्वी डोले,
मेरा अन्तर तुझे टटोले।
यह कैसी है प्रेम सगाई ? राम दुहाई।

अनिल अनल सा छू कर जाता,
मेरा मन व्याकुल घबराता।
रोम रोम मनसिज छा जाता,
नयनों में अमृत भर आता।
कैसे भरदूँ मन की खाई ? राम दुहाई।
दिन बीता पर रात न आई।
छाया तेरा नशा नयन पर, राम दुहाई।

••

गीत

*सत्यपाल भारद्वाज 'समीर'

फिर दिशा कजरा गयी है, फिर निशा गहरा गयी है,
फिर झरा होगा किसी की ग्रांख का काजल कहीं पर !

फिर किसी की बीन के स्वर, सर्द गीले हो चले हैं
लाज से ग्रनभिज्ञ लोचन, क्यों लजीले हो चले हैं,
फिर बिना मौसम ग्रलस, मादक हवा चलने लगी है—
फिर गगन के शून्य उर में घन रंगीले हो चले हैं।
फिर धरा सकुचा रही है, फिर गगन मुसका रहा है—
फिर झरा होगा किसी के नेह का बादल कहीं पर ॥

फिर बिना मधुमास, वृन्तों पर सुमन खिलने लगे हैं,
फिर कुंग्रारे मत्त यौवन के नयन चलने लगे हैं,
जिस हृदय की बीन ने संगीत सीखा ही नहीं था—
ग्राज उसके ग्रनछुए ये तार क्यों हिलने लगे हैं।
फिर चरण उठने लगे हैं, ताल पर चलने लगे हैं,
फिर बजी होगी किसी के पाँव की पायल कहीं पर ॥

फिर गगन कुंचित धरा के कान में कुछ कह रहा है,
फिर कलित कौमार्य ग्रलि के इंगितों पर बह रहा है,
फिर सिमटते सम्पुटों के सलज घूंघट गिर रहे हैं—
मधुकरों का मत्त पौरुष क्रोड में फिर बंध रहा है।
गगन का निर्बन्ध यौवन, व्योम में बिखरा पड़ा है—
फिर उड़ा होगा कुंग्रारे रूप का ग्रांचल कहीं पर ॥

वहुत दिनों से

*जयसिंह चौहान 'जौहरी'

वहुत दिनों से सोच रहा हूँ हृदय खोल मिल लूँ,
किन्तु तुम्हारे बंद द्वार ने मिलने नहीं दिया।
वहुत दिनों से सोचा तुमको आँखों में ढालूँ,
किन्तु अभागे अंधकार ने मिलने नही दिया।
धरती की रज पर मिलते आये है मन के मीत
किन्तु खड़ी मीनारों ने तो मिलने नही दिया
अटल आस्था ले सोचा आती लहरें छू लूँ
किन्तु गया झकझोर ज्वार ने मिलने नही दिया
ले डुबकी तैरा हरदम मन की गहराई पर
किन्तु तटों के आर-पार ने मिलने नही दिया।
सोचा फूलों का हूँ तो फूलों के साथ रहूँ
किन्तु पतित पतझड़ प्रहार ने मिलने नहीं दिया।
खण्डित हुई न धार कही भी गहन घटाओं की
लगी झड़ी झरती फुहार ने मिलने नही दिया।
मन में आया अरुण उदय को पाँखों में भर लूँ
किन्तु किरण बिखरी हजार ने मिलने नहीं दिया

गीत

*बजरंग ला

आज नहीं झरते हैं आँखों से ख्वाब।
और कहाँ बोयें हम गीत के गुलाब।

गाँवों की गन्धमयी माटी है बाँझ।
टूट गई बाँसुरिया, फूट गई झाँझ।।
उतर गयी मनचीते मोती की आब।
और कहाँ बोयें हम गीत के गुलाब।

दुखती हैं अंगुलियाँ बिधा पोर पोर।
रुँधा रुँधा कंठ गुँथी साँसों की डोर।।
बँधा बँधा बेसुर मन, कौन दे जवाब।
और कहाँ बोयें हम गीत के गुलाब।।

कचनारी सुधियों के रतनारी पाँख।
खिड़की पर टिकी टिकी सँझवाती आँख।।
दर्पनी उजालों पर धूल के नक़ाब।
और कहाँ बोयें हम गीत के गुलाब।।

ताजमहल बिखर गया जमुना के तीर।
पीड़ा ने लहरों पर खींच दी लकीर।।
बंजारा चाँद और खंडहरी शबाब।
और कहाँ बोयें हम गीत के गुलाब।

सादया का शाम

ंविंद'

झुक आयी सर्दियों की शाम,
ठिठुरी हवाएँ पूछ रही नाम।

आंगन में मुस्काये
देह के गुलाब,
मन के हर छोर-छोर
उमड़े सैलाब।

कौन जाने क्या हो अंजाम !
झुक आयी सर्दियों की शाम।

कोहरे ने डाल दिया
झील पर पड़ाव,
बूढा सूरज फिर-फिर
पूछ रहा भाव।

कलियों को कर दिया बदनाम,
झुक आयी सर्दियों की शाम।

कसमसाते यौवन में,
डूबे आलिंगन,
टूक-टूक रिश्तों को
जोड़ रहे बंधन।

सपनों के टूटते विराम,
झुक आयी सर्दियों की शाम।

लोग

*सुरेश पारीक 'शशिकर'

गीतों को लोग, देखो,
आजकल गाते हैं गज़लों में।
झोंपड़ियों की योजना
बैठकर बनाते हैं बंगलों में।।
ये पथरीले खेतों मे
बोते हैं चौपाइयाँ
वे सोरठे की तान में,
काट रहे हैं रुबाइयाँ।।
अब बसन्त बहार, लोग
जा रहे, बम्बूल के जंगलों में।।
अब आयोजक सोच रहे
बन गयी परस्थिति विकट।
जनता को मालूम आज
सो नही लेती है टिकिट।।
यक्ष्मा से ग्रस्त मनुष्य
उतरते अब राष्ट्रीय दंगलों में।।
अजी सत्य एक तरफ बाढ
और एक तरफ सूखा है।
राजनीतिज्ञ देख लो सिर्फ
अब सत्ता का भूखा है।।
दल परिवर्तन हो रहा,
आजकल मान-सरोवर बगुलों में।।
समझ में नही आती अब बाबू की भाषा।
काम हो जायेगा, केवल मिलता है झाँसा।।
कैरियर बिगड़ रहा,
हमारा, अब एरियर के घपलों में।।
गीतों को लोग, देखो,
आजकल गाते हैं गज़लों मे।

दर्पण के व्रण

*रामस्वरूप 'परे

अपनों से छला गया सपनों का धन।
प्राणों में कसक रहे नागफनी क्षण।
तन पर भी सीमा है, मन पर परिवेश,
अपना ही घर है पर लगता परदेश।
अपनापन जैसे है पानी पर चिकनाई,
सूख जैसे गागर में चेहरे की हो झाँई !
आकृतियाँ नोच रहीं दर्पण के व्रण।
प्राणों में कसक रहे नागफनी क्षण।।
कहने को जीवन है कितना अभिराम,
सीता ना मिल पायी ढूँढ़ थके राम।
केवल बस मावस पर अपना अधिकार,
पूनम तो महलों में करती अभिसार।
डसने को आतुर हैं सुधियों के फन।
प्राणों में कसक रहे नागफनी क्षण।।
नैतिकता आज हुई पुस्तक में बंद
सच्चाई सीती है अपने पैबंद।
है युग के हाथों में निज-हित की ढाल,
खादी के कुर्ते में रेशमी रूमाल।
अर्थ स्वयं भोग रहा शब्दों का तन।
प्राणों में कसक रहे नागफनी क्षण।।
मूल्यों ने बदले हैं अपने परिधान,
कुण्ठाएँ घेर खड़ी मन का दालान।
खिले कई आशा के कागजी चमन,
आस्थाएँ करती हैं देव का गबन।
प्रीत यहाँ देती है मखमली चुभन।
प्राणों में कसक रहे नागफनी क्षण।।

राजघाट

*रामनिवास सोनी

यमुना, धीरे बहो यहाँ पर लेटा है वह संन्यासी।
जिसकी गाथा याद रखेंगे युग युग तक भारतवासी।।

मानवता की इस समाधि में राष्ट्र देवता सोया है।
यही संत ने गोली खाकर बीज प्रेम का बोया है।।

यहाँ मुहम्मद मजहब के शैतान भेड़ियों से घायल।
यहाँ राम का अटल पुजारी सोया है इतिहास बदल।।

सूली पर चढ कर ईसा ने यही आखिरी साँस लिया।
यही बुद्ध ने देह त्याग जन जन को अमर प्रकाश दिया।।

यहाँ अहिंसा मूर्छित है, सुकरात जहर पी लेटा है।
यहाँ आग ने पानी बन कर सारा द्वेष समेटा है।।

यह समाधि है राष्ट्र पिता की यहाँ घृणा का नाम नहीं।
यहाँ खून से भरी जिन्दगी जीने का अरमान नहीं।।

धीरे बोलो, अरे यहाँ पर महाशान्ति का पहरा है।
संगीनों से प्यार न होगा यहाँ देवता बहरा है।।

कफन ओढकर यहाँ पितामह लेटा है लेकर अभिमान।
यह बापू का राजघाट है मानवता का तीर्थ महान।।

हिन्दी की समकालीन कविता मे रामदेव आचार्य एक सुप
नाम है। कविताहीनता के इस दौर में कविता की आत्मा की
पकड़ और उसकी ठोस व विश्वसनीय अभिव्यक्ति के लिए
कविताएँ उद्धृत की जाती हैं। 'अक्षरों का विद्रोह' से लेकर
क की काव्य यात्रा के दौरान आप एक ऐसा कवि-व्यक्तित्व
जितना संवेदनशील है, उतना ही आक्रोशी भी। आक्रोश वर्त
प्रति, आस्था अनागत के प्रति।

कविता के साथ-साथ श्री आचार्य की प्रतिभा साहित्यालो
रूप में भी प्रस्फुटित हुई है। देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिका
इनके समीक्षात्मक लेख छपते आए हैं और उन पर गोष्ठियो
एँ भी होती रही हैं।

जन्म १९३४, प्रकाशित कृतियाँ—'अक्षरों का विद्रोह' (कविता,
रो सूरज' (राजस्थानी कविता), 'त्रयी' (जगदीश गुप्त
सम्पादित पुस्तक के प्रथम कवि); प्रकाश्य—'दो सूरजो
व' (कविता), 'चेतना के कक्ष' (समीक्षात्मक लेख)।

रचना के अतिरिक्त अन्य किसी भी गैर-साहित्यिक पंक्तिवद्धता
था नही रखते।

... अंग्रेजी विभाग, राजकीय डूँगर कॉलेज, बीकानेर।